

---

**Registration No. V-36244/2008-09**

**ISSN :- 2350-0611**

---

The journal has been listed in 'UGC Approved List of Journals' with Journal No. – 48441 in previous list of UGC

**JIFE Impact Factor – 5.23**

# *Research Highlights*

*A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal*

*Editor*

**Dr. Kamlesh Kumar Singh**

Assistant Professor

Department of Sociology

Pt. D.D.U. Govt. Girls P.G. College

Sevapuri, Varanasi

---

**Volume - XII**

**No. - 4**

**(Oct. – Dec. 2025)**

---

(Part – IV)

*Published by*  
**Future Fact Society**  
**Varanasi (U.P.) India**

*Research Highlights* - A Referred Journal, Published by : Quarterly

**Correspondence Address :**

**C 4/270, Chetganj**

**Varanasi, (U.P.)**

**Pin. - 221 010**

**Mobile No. :- 09336924396**

**Email- researchhighlights1@gmail.com**

**Note :-**

The views expressed in the journal "Research Highlights" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

**Managing Editor**  
*Avinash Kumar Gupta*

©Publisher

**ISSN : 2350-0611**

**Printed by**

Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

### **ADVISORY BOARD**

- **Prof. T. N. Singh**, United Nations Professor of Plant Physiology, Department of Plant Sciences, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Prof. S.K. Bhatnagar**, School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. (Dr.) Munna Singh**, Head of Department, Physical Education and Sports Sciences Department, Handia P.G. College, Handia, Prayagraj, U.P.
- **Dr Achchhe Lal Yadav**, Assistant Professor, Physical Education, Pt. D. D. U. Government Degree College, Saidpur, Ghazipur
- **Dr. Pramod Rao**, Assistant Professor, Department of Hindi, VBS Purvanchal University, Jaunpur
- **Dr. Anil Pratap Giri**, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Pondicherry Central University, Pondicherry.

### **EDITORIAL BOARD**

- **Dr. Sanjay Singh**, Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan**, Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Shailendra Singh**, Professor and Head, Department of Sociology, J.S. University, Sikohabad, U.P.
- **Dr. Manish Arora**, Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya**, Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray**, Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi**, Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh**, Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Satyapal Yadav**, Assistant Professor, Department of History, Banaras Hindu University, Varanasi.
- **Dr. Brajesh Kumar Prasad**, Assistant Professor, Department of History, Banaras Hindu University, Varanasi.
- **Dr. Dewendra Pratap Tiwari**, Assistant Professor, Department of Political Science, Shree Lakshmi Kishori Mahavidyalaya (A Constituent Unit of BRA Bihar University, Muzaffarpur), Bihar

- **Dr. Hena Hussain**, Assistant Professor, Department of Psychology, Oriental College, Patna City (A Constituent Unit of Patliputra University, Patna), Bihar
- **Dr. Santosh Kumar Singh**, Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh**, Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur
- **Dr. Girish Kumar Tiwari**, Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Vaibhav Kaithvas**, Assistant Professor, Department of Performing Art, Eklavya University, Sagar Road, Damoh, MP
- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan**, Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey**, Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi



## EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Research Highlights**, a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

**Note:** All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

**Editor**



## CONTENTS

### *"Research Highlights"*

➔	ईश्वर के प्रेम, कृपा और उद्धार की धारणा : ईसाई धर्मदर्शन का तुलनात्मक अध्ययन <b>डॉ. अमित कुमार</b>	01-03
➔	21वीं सदी में भारतीय राजनीत में महिला सशक्तिकरण उभरता स्वरूप <b>डॉ. शिप्रा भारती</b>	04-08
➔	गोपालतापिन्योपनिषद् में श्रीकृष्ण का परमदेवत्व एवं स्वरूप विवेचन <b>हिमाद्रि शिवहरे</b>	09-14
➔	समकालीन परिदृश्य में हिंदी की चुनौतियाँ और संभावनाएँ <b>रंजेश कुमार गुप्ता</b>	15-19
➔	सोशल नेटवर्किंग के उपयोग का उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों के शैक्षिक निष्पादन पर प्रभाव : समय प्रबंधन और ध्यान एकाग्रता के संदर्भ में अध्ययन <b>आलोक आनन्द</b> <b>डॉ. लाल बाबू सिंह</b>	20-25
➔	कविभुवनेश्वरकरविरचिते दोषशतके सामाजिकस्थिते: अवलोकनम् <b>प्रतिश्रुतिपरिरायः</b>	26-30
➔	हिंदी पत्रकारिता में हिंदी-उर्दू विभाजन की ऐतिहासिक प्रक्रिया <b>रोहित रावत</b>	31-37
➔	हारीति एवं पांचिका की संयुक्त मूर्तियों का प्रतिमा शास्त्रीय अध्ययन : गांधार कला के विशेष सन्दर्भ में <b>आकाश कुमार</b> <b>प्रो. अजय प्रकाश खरे</b>	38-44
➔	चेचक टीकाकरण की जैव राजनीति : वेरियलेशन से वैक्सीनेशन तक <b>विजय प्रकाश सिंह</b>	45-48
➔	प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के शैक्षिक रुचि तथा समायोजन पर प्रभाव का अध्ययन <b>डॉ. सुरेन्द्र यादव</b>	49-52
➔	संगीत शिक्षा एवं उसका बदलता स्वरूप : एक विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण <b>डॉ. रोली कनौजिया</b>	53-57
➔	वाल्मीकि रामायण की नायिका सीता का आधुनिक परिवेश में अध्ययन <b>अरुन्धती दूबे</b> <b>डॉ. अशोक कुमार वर्मा</b>	58-60
➔	किशोरियों का मासिक धर्म स्वास्थ्य एवं स्वच्छता का समाजशास्त्रीय अध्ययन <b>डॉ. भावना डोभाल</b>	61-64
➔	भारतीय नीतिशास्त्र की प्रासंगिकता: एक समकालीन दार्शनिक एवं आलोचनात्मक अध्ययन <b>डॉ. प्रदीप कुमार पाण्डेय</b>	65-72

## ईश्वर के प्रेम, कृपा और उद्धार की धारणा : ईसाई धर्मदर्शन का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. अमित कुमार\*

### शोध-सार :

प्रस्तुत अध्ययन "ईश्वर के प्रेम, कृपा और उद्धार की धारणा : ईसाई धर्मदर्शन का तुलनात्मक अध्ययन" का अध्ययन है। यह अध्ययन ईसाई धर्मदर्शन में ईश्वर के प्रेम, कृपा तथा उद्धार की अवधारणाओं का विश्लेषण करता है और विभिन्न परम्पराओं के बीच उनके तुलनात्मक आयामों को स्पष्ट करता है। विशेष रूप से Augustine of Hippo, Thomas Aquinas, Martin Luther और Karl Barth जैसे धर्मदर्शियों के विचारों के आलोक में यह देखा गया है कि प्रेम, अनुग्रह और उद्धार के सिद्धान्त किस प्रकार मानव-ईश्वर सम्बन्ध को परिभाषित करते हैं। अध्ययन यह भी इंगित करता है कि इन धारणाओं का नैतिकता, स्वतंत्र इच्छा, पाप और मुक्ति की समझ पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

**कुंजिका :** ईश्वर, अनुग्रह/कृपा, उद्धार, विश्वास, मुक्ति, अवतार, न्याय और दया आदि।

**प्रस्तावना :** ईसाई धर्मदर्शन का केन्द्रीय तत्व ईश्वर और मानव के मध्य स्थापित वह जीवंत संबंध है जिसकी नींव प्रेम, कृपा और उद्धार पर टिकी हुई है। ईसाई परम्परा के अनुसार ईश्वर केवल सृष्टिकर्ता नहीं, बल्कि करुणामय पिता है जो मनुष्य से प्रेम करता है, उसे अपनी अनुग्रहपूर्ण शक्ति से सहारा देता है और अंततः पाप तथा मृत्यु से मुक्त कर उद्धार प्रदान करता है। इस प्रकार प्रेम ईश्वर के स्वभाव का प्रकटीकरण है, कृपा उसकी सक्रिय उपस्थिति है, और उद्धार उस उपस्थिति का परिणामी फल है।

बाबल में बार-बार यह प्रतिपादित किया गया है कि ईश्वर का प्रेम अनार्जित और सार्वभौमिक है। मनुष्य अपनी सीमाओं, दुर्बलताओं और पापमय स्थिति के कारण स्वयं मुक्ति प्राप्त करने में सक्षम नहीं है, अतः ईश्वर स्वयं पहल करता है। यह पहल कृपा के रूप में व्यक्त होती है, जिसके द्वारा मानव को नया जीवन, क्षमा और पुनर्स्थापना मिलती है। ईसाई धर्म में यह धारणा अत्यंत महत्वपूर्ण है कि उद्धार मानवीय प्रयास का प्रतिफल न होकर ईश्वरीय दान है।

इतिहास में विभिन्न धर्मदर्शियों ने इन सिद्धान्तों की अलग-अलग व्याख्या की है। प्रारम्भिक कलीसिया से लेकर मध्ययुगीन और आधुनिक युग तक, प्रेम, कृपा और उद्धार की समझ में निरंतर विकास तथा संवाद देखने को मिलता है। उदाहरणतः Augustine of Hippo ने मानव की पतित अवस्था पर बल देते हुए कहा कि उद्धार पूर्णतः ईश्वर की कृपा पर निर्भर है। वहीं Thomas Aquinas ने कृपा और मानवीय सहयोग के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया। सुधार आंदोलन के समय Martin Luther ने विश्वास के द्वारा धर्मी ठहराए जाने पर जोर दिया, जबकि आधुनिक काल में Karl Barth ने ईश्वर की सार्वभौमिक पहल और मसीह-केन्द्रित उद्धार की पुनर्व्याख्या प्रस्तुत की।

इन विविध मतों से स्पष्ट होता है कि यद्यपि आधारभूत विश्वास समान है, फिर भी उनके दार्शनिक एवं धर्मशास्त्रीय प्रतिपादन में पर्याप्त भिन्नताएँ विद्यमान हैं। यही भिन्नताएँ तुलनात्मक अध्ययन को आवश्यक और सार्थक बनाती हैं। यह अध्ययन न केवल ऐतिहासिक विकास को समझने का प्रयास है, बल्कि यह भी जानने का प्रयत्न है कि आज के सामाजिक और नैतिक संकटों के बीच इन अवधारणाओं की क्या प्रासंगिकता है।

समकालीन विश्व हिंसा, अन्याय, असमानता और निराशा से जूझ रहा है। ऐसे समय में ईश्वर के प्रेम और कृपा का संदेश मानव गरिमा, क्षमा, मेल-मिलाप और सेवा की भावना को प्रोत्साहित करता है। उद्धार की धारणा केवल परलोक की आशा तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वर्तमान जीवन में परिवर्तन और जिम्मेदारी की प्रेरणा भी देती है। इसलिए यह विषय धर्मदर्शन, नैतिकता और सामाजिक चिंतन तीनों के लिए महत्वपूर्ण है।

\* पी-एच. डी., स्नातकोत्तर दर्शनशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार  
E-mail: amitkum6914@gmail.com, Mob. : 8789984673

प्रस्तुत शोध में इन अवधारणाओं का विश्लेषण करते हुए यह समझने का प्रयास किया जाएगा कि ईश्वर की पहल, मानवीय प्रतिक्रिया, विश्वास, कर्म और समुदाय इन सबके बीच क्या संबंध स्थापित होता है। तुलनात्मक दृष्टिकोण से विभिन्न परम्पराओं का परीक्षण करने पर यह भी स्पष्ट होगा कि मतभेदों के बावजूद ईसाई चिंतन में प्रेम, कृपा और उद्धार एक अभिन्न त्रयी के रूप में कार्य करते हैं।

अतः यह अध्ययन ईसाई धर्मदर्शन की मूल आत्मा को समझने की दिशा में एक प्रयास है, जहाँ ईश्वर का प्रेम मानव इतिहास में सक्रिय होता है, कृपा के रूप में कार्य करता है, और अंततः समस्त सृष्टि के उद्धार की आशा को जन्म देता है।

### साहित्य समीक्षा

Pope Francis, (2020) फ्रातेल्ली तुत्ती, वेटिकन पब्लिशिंग, इस दस्तावेज में ईश्वर के प्रेम को सार्वभौमिक बंधुत्व और सामाजिक मित्रता की आधारशिला माना गया है। लेखक के अनुसार दैवी कृपा मनुष्य को स्वार्थ से ऊपर उठाकर दूसरों की सेवा में प्रवृत्त करती है। उद्धार को वे व्यक्तिगत अनुभव से आगे बढ़ाकर सामाजिक और ऐतिहासिक परिवर्तन की प्रक्रिया के रूप में देखते हैं।<sup>1</sup>

N. T. Wright, (2016) जिस दिन क्रांति प्रारम्भ हुई, हार्परवन, राइट के अनुसार क्रूस की घटना ईश्वर के प्रेम और न्याय का संगम है। वे बताते हैं कि उद्धार केवल व्यक्ति की आत्मा की मुक्ति नहीं, बल्कि संपूर्ण सृष्टि के नवीनीकरण से संबंधित है।<sup>2</sup>

Alistair McGrath, (2011) क्रिश्चियन थियोलॉजी : एक परिचय. वाइली-ब्लैकवेल। मैकग्राथ ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में कृपा, विश्वास और उद्धार की अवधारणाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया है। वे दर्शाते हैं कि अलग-अलग परम्पराएँ ईश्वर की पहल को स्वीकार करते हुए भी मानवीय उत्तरदायित्व की व्याख्या भिन्न रूप में करती हैं।<sup>3</sup>

Wolfhart Pannenberg, (1991) सिस्टेमैटिक थियोलॉजी, खंड-2. एर्डमन्स।

पाननबर्ग के अनुसार ईश्वर का प्रेम इतिहास में सक्रिय है और उद्धार भविष्य की पूर्णता की ओर इंगित करता है। वे पुनरुत्थान को दैवी प्रेम की अंतिम पुष्टि मानते हैं।<sup>4</sup>

Jürgen Moltmann, (1974) क्रूसित परमेश्वर, एस.सी.एम. प्रेस, मोल्टमान ने पीड़ा में सहभागी ईश्वर की छवि प्रस्तुत की। उनके लिए कृपा आशा को जन्म देती है और उद्धार दुःख से मुक्ति की संभावनाओं को खोलता है।<sup>5</sup>

Karl Rahner (1978), क्रिश्चियन विश्वास की आधारशिलाएँ, सीबरी प्रेस, रानर मनुष्य को ईश्वर की आत्म-प्रदान करने वाली कृपा के लिए खुला अस्तित्व मानते हैं। उद्धार उनके विचार में ईश्वर और मानव के बीच गहन संगति की परिणति है।<sup>6</sup>

Karl Barth, (1956) चर्च डॉगमैटिक्स. टी एंड टी क्लार्क, बार्थ ने जोर देकर कहा कि कृपा पूर्णतः ईश्वर की स्वतंत्र पहल है। मानव उद्धार दैवी प्रेम की देन है, जिसे कर्मों से अर्जित नहीं किया जा सकता।<sup>7</sup>

Gustaf Aulén, (1931) क्रिस्टस विक्टर. एस.पी.सी.के, ऑलेन ने उद्धार को बुराई की शक्तियों पर मसीह की विजय के रूप में समझाया। यह दृष्टिकोण प्रेम को मुक्तिदायी और विजयी क्रिया के रूप में प्रस्तुत करता है।<sup>8</sup>

### उद्देश्य

1. ईसाई धर्म में प्रेम, कृपा और उद्धार की मूलभूत अवधारणाओं का दार्शनिक विश्लेषण।
2. प्रमुख धर्मदर्शियों के मतों का तुलनात्मक परीक्षण।
3. इन सिद्धान्तों के सामाजिक-नैतिक निहितार्थों का मूल्यांकन।
4. ईश्वर की पहल, मानवीय प्रतिक्रिया, विश्वास, कर्म और समुदाय इन सबके बीच क्या संबंध स्थापित होता है इसकी जानकारी प्राप्त करना।

### निष्कर्ष

इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि ईसाई धर्मदर्शन में ईश्वर का प्रेम, कृपा और उद्धार तीन पृथक सिद्धान्त नहीं, बल्कि एक ही दैवीय योजना के परस्पर संबद्ध आयाम हैं। प्रेम ईश्वर के स्वभाव का मूल तत्त्व है, कृपा उसी प्रेम की क्रियाशील अभिव्यक्ति है और उद्धार उस क्रिया का परिणाम, जिसके द्वारा मनुष्य ईश्वर के साथ पुनः संगति में स्थापित होता है। इस त्रयी को समझे बिना ईसाई धर्मशास्त्र की संपूर्णता को ग्रहण करना संभव नहीं।

तुलनात्मक विश्लेषण से यह सामने आया कि विभिन्न युगों और परम्पराओं में इन अवधारणाओं की व्याख्या भिन्न रही है, परन्तु आधारभूत विश्वास में एकता विद्यमान है—उद्धार अंततः ईश्वर की पहल है।

प्रारम्भिक परंपरा में Augustine of Hippo ने मानव की निर्बलता और दैवी कृपा की अनिवार्यता को रेखांकित किया। मध्ययुग में Thomas Aquinas ने यह दिखाया कि कृपा मनुष्य को नष्ट नहीं करती, बल्कि उसे पूर्ण बनाती है। सुधार आंदोलन के दौरान Martin Luther ने विश्वास के माध्यम से धर्मी ठहराए जाने पर बल देते हुए यह प्रतिपादित किया कि उद्धार किसी भी मानवीय उपलब्धि का परिणाम नहीं है। आधुनिक चिंतन में जॉन्स टॉन्जी ने ईश्वर की संप्रभु स्वतंत्रता और मसीह में प्रकट प्रेम को केंद्र में रखा।

अध्ययन यह भी दर्शाता है कि प्रेम, कृपा और उद्धार की अवधारणाएँ केवल सैद्धान्तिक विमर्श नहीं हैं। उनका गहरा नैतिक और सामाजिक प्रभाव है। यदि ईश्वर प्रेममय है, तो मानव समुदाय को भी क्षमा, करुणा, न्याय और सेवा के मूल्यों को अपनाने के लिए बुलाया जाता है। इस प्रकार उद्धार की अनुभूति व्यक्ति को आंतरिक रूप से परिवर्तित करती है और समाज में मेल-मिलाप तथा मानवीय गरिमा को बढ़ावा देती है।

तुलनात्मक दृष्टि से यह निष्कर्ष निकलता है कि मतभेद मुख्यतः इस प्रश्न पर केन्द्रित हैं कि मानवीय स्वतंत्र इच्छा और कर्म की भूमिका कितनी है, परन्तु सभी परम्पराएँ इस तथ्य को स्वीकार करती हैं कि पहल ईश्वर की ओर से होती है। मनुष्य उस प्रेम का प्रत्युत्तर विश्वास, आज्ञाकारिता और नैतिक जीवन के माध्यम से देता है।

अंततः कहा जा सकता है कि ईसाई धर्मदर्शन में उद्धार कोई दूरस्थ या केवल परलौकिक प्रतिज्ञा नहीं, बल्कि वर्तमान जीवन में परिवर्तन की शक्ति है। ईश्वर का प्रेम मानव इतिहास में सक्रिय होकर कृपा के माध्यम से नई सृष्टि की संभावना खोलता है। यही आशा इस धर्मदर्शन की आत्मा है और यही इसके सतत प्रासंगिक बने रहने का कारण भी।

#### सन्दर्भ सूची : -

1. Pope Francis, (2020) फ्रातेल्ली तुत्ती. वेटिकन सिटी: वेटिकन प्रकाशन।
2. N. T. Wright, (2016). जिस दिन क्रांति प्रारम्भ हुई, न्यूयॉर्क हार्परवन प्रकाशन।
3. Alister McGrath, (2011) क्रिश्चियन थियोलॉजी : एक परिचय, ऑक्सफोर्ड वाइली-ब्लैकवेल प्रकाशन।
4. Wolfhart Pannenberg, (1991) सिस्टेमैटिक थियोलॉजी (खंड-2). ग्रैंड रैपिड्स (मिशिगन) एर्डमन्स प्रकाशन।
5. Jürgen Moltmann, (1974) क्रूसित परमेश्वर, लंदन, एस.सी.एम. प्रेस।
6. Karl Rahner (1978), क्रिश्चियन विश्वास की आधारशिलाएँ, न्यूयॉर्क सीबरी प्रेस।
7. Karl Barth (1956), चर्च डॉगमैटिक्स, एडिनबरा, टी एंड टी क्लार्क।
8. Gustaf Aulén (1931), क्रिस्टस विक्टर, लंदन, एस.पी.सी.के. प्रकाशन।



## 21वीं सदी में भारतीय राजनीत में महिला सशक्तिकरण उभरता स्वरूप

डॉ. शिप्रा भारती\*

सार—

प्रस्तुत अध्ययन "21वीं सदी में भारतीय राजनीत में महिला सशक्तिकरण उभरता" का विश्लेषण करना है। इस शोध लेख में 21वीं सदी में भारतीय राजनीति में महिला सशक्तिकरण का स्वरूप मात्र प्रतिनिधित्व की संख्या बढ़ाने तक सीमित नहीं रहा है, बल्कि यह नीति-निर्माण की दिशा, नेतृत्व की प्रकृति, सामाजिक न्याय की अवधारणा तथा लोकतांत्रिक सुदृढ़ता से संबद्ध एक व्यापक और बहुआयामी विमर्श के रूप में विकसित हुआ है। भारतीय लोकतंत्र में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी की जड़ें स्वतंत्रता संग्राम में निहित हैं, जहाँ सरोजिनी नायडू, अरुणा आसफ अली और कस्तूरबा गांधी जैसी अग्रणी महिलाओं ने उल्लेखनीय योगदान दिया। इक्कीसवीं सदी में यह प्रक्रिया अधिक संगठित, संस्थागत और संवैधानिक रूप से सशक्त हुई है। पंचायती राज संस्थाओं में आरक्षण प्रावधानों ने स्थानीय स्तर पर महिला नेतृत्व को नई पहचान और वैधता प्रदान की है। वहीं राष्ट्रीय राजनीति में प्रतिभा पाटिल, सुषमा स्वराज, निर्मला सीतारमण तथा ममता बनर्जी जैसी नेताओं ने सत्ता के उच्चतम स्तरों पर प्रभावशाली उपस्थिति दर्ज कराते हुए महिला सशक्तिकरण को ठोस राजनीतिक स्वर प्रदान किया है।

प्रस्तुत लेख 21वीं सदी के भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में महिला सशक्तिकरण के विकसित होते आयामों का सामाजिक, संवैधानिक, नीतिगत तथा वैचारिक दृष्टियों से सम्यक् विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

**मूल शब्द—** महिला सशक्तिकरण, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, लोकतंत्र, आरक्षण, नेतृत्व, सामाजिक न्याय आदि।

**प्रस्तावना**

21वीं सदी का भारतीय समाज तीव्र सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। वैश्वीकरण, उदारीकरण, सूचना-प्रौद्योगिकी क्रांति, शिक्षा के प्रसार और लोकतांत्रिक चेतना के विस्तार ने भारतीय राजनीति की संरचना और प्रकृति दोनों को गहराई से प्रभावित किया है। इस व्यापक परिवर्तनशील परिदृश्य में महिला सशक्तिकरण केवल एक सामाजिक नारा या नीतिगत घोषणा भर नहीं रहा, बल्कि यह लोकतांत्रिक विकास की केंद्रीय शर्त के रूप में उभरकर सामने आया है। भारतीय राजनीति में महिलाओं की भागीदारी का प्रश्न अब केवल प्रतिनिधित्व की संख्या तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सत्ता-संरचनाओं में उनकी निर्णायक भूमिका, नीति-निर्माण में सहभागिता, नेतृत्व की शैली, लैंगिक न्याय तथा सामाजिक समावेशन से गहराई से जुड़ गया है।

भारतीय राजनीतिक परंपरा में महिलाओं की सक्रिय उपस्थिति का इतिहास स्वतंत्रता आंदोलन से आरंभ होता है। सरोजिनी नायडू, अरुणा आसफ अली, कस्तूरबा गांधी तथा विजयलक्ष्मी पंडित जैसी महिलाओं ने राष्ट्रीय आंदोलन में अग्रणी भूमिका निभाकर यह सिद्ध किया कि राजनीति केवल पुरुषों का क्षेत्र नहीं है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान ने समानता, स्वतंत्रता और न्याय के सिद्धांतों के माध्यम से महिलाओं को राजनीतिक अधिकारों की संवैधानिक गारंटी प्रदान की। संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 16 ने विधिक समानता और अवसरों की समानता सुनिश्चित की, जबकि सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार ने महिलाओं को प्रारंभ से ही राजनीतिक प्रक्रिया का पूर्ण सहभागी बनाया।

फिर भी स्वतंत्रता के बाद के दशकों में राजनीति में महिलाओं की वास्तविक भागीदारी अपेक्षाकृत सीमित रही। संसद और विधानसभाओं में उनकी उपस्थिति न्यून रही, और नेतृत्व के शीर्ष पदों पर महिलाओं की संख्या नगण्य थी। हालांकि इंदिरा गांधी जैसी शक्तिशाली नेता का उदय भारतीय राजनीति में महिला नेतृत्व की संभावनाओं को रेखांकित करता है, परंतु यह अपवाद अधिक था, प्रवृत्ति कम। 20वीं सदी के उत्तरार्ध तक महिला सशक्तिकरण का विमर्श मुख्यतः सामाजिक सुधार, शिक्षा और कल्याणकारी योजनाओं तक सीमित रहा।

\* अतिथि शिक्षक, राजनितिक विज्ञान विभाग, नालंदा महिला कॉलेज, बिहारशरिफ  
E-mail Id : shipraviswarkarma@gmail.com, Mob. No. : 9523063954

21वीं सदी में प्रवेश के साथ ही महिला सशक्तिकरण का राजनीतिक स्वरूप अधिक संगठित, संस्थागत और बहुआयामी रूप में सामने आया। 1990 के दशक में पारित 73वें और 74वें संविधान संशोधनों के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं और नगरीय निकायों में महिलाओं के लिए आरक्षण ने जमीनी स्तर पर राजनीतिक सशक्तिकरण की आधारशिला रखी। इस व्यवस्था ने लाखों महिलाओं को पहली बार औपचारिक राजनीतिक संरचनाओं में प्रवेश का अवसर प्रदान किया। ग्रामीण भारत में 'सरपंच' और 'वार्ड सदस्य' के रूप में महिलाओं की उपस्थिति ने सत्ता के विकेंद्रीकरण को नई दिशा दी। 21वीं सदी में इस प्रक्रिया का विस्तार हुआ, और कई राज्यों ने 33 प्रतिशत से बढ़ाकर 50 प्रतिशत तक आरक्षण लागू किया, जिससे स्थानीय राजनीति में महिलाओं की निर्णायक भागीदारी सुनिश्चित हुई।

राष्ट्रीय स्तर पर भी महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी के प्रश्न ने नया आयाम प्राप्त किया। संसद और विधानसभाओं में महिलाओं के आरक्षण की मांग लंबे समय से चलती रही, जिसका परिणाम अंततः 2023 में पारित नारी शक्ति वंदन अधिनियम के रूप में सामने आया। इस अधिनियम ने लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं के लिए एक-तिहाई आरक्षण का संवैधानिक प्रावधान सुनिश्चित कर भारतीय राजनीति में लैंगिक प्रतिनिधित्व के नए युग की शुरुआत की। यह केवल एक विधायी परिवर्तन नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक संरचना में लैंगिक समानता की दिशा में ऐतिहासिक कदम है।

21वीं सदी की भारतीय राजनीति में महिला सशक्तिकरण का उभरता स्वरूप केवल संवैधानिक और विधायी प्रावधानों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह नेतृत्व की प्रकृति और राजनीतिक संस्कृति में भी परिवर्तन का संकेत देता है। आज महिलाएँ केवल प्रतीकात्मक उपस्थिति तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे मुख्यमंत्री, मंत्री, पार्टी अध्यक्ष और संसदीय समितियों की अध्यक्ष के रूप में सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। ममता बनर्जी, मायावती, सुषमा स्वराज और निर्मला सीतारमण जैसी नेताओं ने विभिन्न स्तरों पर प्रभावशाली नेतृत्व का उदाहरण प्रस्तुत किया है। इन नेताओं की राजनीतिक यात्रा यह दर्शाती है कि महिलाएँ न केवल चुनाव जीतने में सक्षम हैं, बल्कि जटिल नीतिगत निर्णयों और प्रशासनिक दायित्वों को भी सफलतापूर्वक निभा सकती हैं।

समकालीन भारतीय राजनीति में महिला सशक्तिकरण का एक महत्वपूर्ण आयाम नीतिगत हस्तक्षेपों के माध्यम से भी दिखाई देता है। 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ', 'उज्ज्वला योजना', 'स्वच्छ भारत मिशन' और स्वयं सहायता समूहों (SHGs) के विस्तार जैसी योजनाओं ने महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक सशक्तिकरण को राजनीतिक विमर्श का अभिन्न हिस्सा बना दिया है। डिजिटल इंडिया और वित्तीय समावेशन की नीतियों ने महिलाओं को बैंकिंग, उद्यमिता और प्रत्यक्ष लाभ अंतरण जैसी प्रक्रियाओं से जोड़ा, जिससे उनकी राजनीतिक चेतना और भागीदारी में वृद्धि हुई।

21वीं सदी में सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म का विस्तार भी महिला सशक्तिकरण के उभरते स्वरूप में महत्वपूर्ण कारक रहा है। डिजिटल माध्यमों ने महिलाओं को अपनी आवाज व्यक्त करने, सामाजिक आंदोलनों में भाग लेने और राजनीतिक विमर्श को प्रभावित करने का नया मंच प्रदान किया है। रुडमज्जव आंदोलन जैसे अभियानों ने सत्ता-संरचनाओं में व्याप्त लैंगिक असमानताओं को चुनौती दी और राजनीतिक दलों को लैंगिक संवेदनशीलता के प्रति अधिक सजग होने के लिए बाध्य किया।

हालांकि इन सकारात्मक परिवर्तनों के बावजूद चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं। राजनीतिक दलों में टिकट वितरण की प्रक्रिया में महिलाओं को समान अवसर नहीं मिल पाता, चुनावी हिंसा और संसाधनों की असमानता उनके लिए बाधक बनती है, तथा पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना अब भी राजनीति में उनके प्रभाव को सीमित करती है। कई बार स्थानीय निकायों में निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों के स्थान पर उनके पुरुष परिजन वास्तविक शक्ति का प्रयोग करते हैं, जिसे 'प्रॉक्सी राजनीति' कहा जाता है। यह स्थिति दर्शाती है कि विधिक प्रावधानों के साथ-साथ सामाजिक चेतना में भी परिवर्तन आवश्यक है।

21वीं सदी में महिला सशक्तिकरण का उभरता स्वरूप अंततः भारतीय लोकतंत्र की परिपक्वता का संकेतक है। जब महिलाएँ राजनीतिक निर्णय-निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाती हैं, तब नीतियाँ अधिक समावेशी, संवेदनशील और जनोन्मुखी बनती हैं। अनुसंधानों से यह सिद्ध हुआ है कि जिन क्षेत्रों में महिला प्रतिनिधित्व अधिक है, वहाँ शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक कल्याण से संबंधित योजनाओं पर अधिक ध्यान दिया जाता है। इस प्रकार महिला सशक्तिकरण केवल लैंगिक न्याय का प्रश्न नहीं, बल्कि सुशासन और सतत विकास का भी आधार है।

समग्रतः 21वीं सदी में भारतीय राजनीति में महिला सशक्तिकरण का स्वरूप बहुआयामी, गतिशील और संस्थागत रूप से सुदृढ़ होता हुआ दिखाई देता है। संवैधानिक प्रावधान, आरक्षण नीति, प्रभावशाली महिला नेतृत्व, सामाजिक आंदोलनों और डिजिटल सक्रियता इन सभी ने मिलकर भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका को पुनर्परिभाषित किया है। यह परिवर्तन अभी अधूरा है, किंतु दिशा स्पष्ट है एक ऐसे लोकतंत्र की ओर, जहाँ सत्ता-साझेदारी में लैंगिक संतुलन केवल आदर्श नहीं, बल्कि व्यावहारिक वास्तविकता बने। यही 21वीं सदी की भारतीय राजनीति में महिला सशक्तिकरण का उभरता स्वरूप है, जो भविष्य में और अधिक सशक्त एवं व्यापक होने की संभावना रखता है।

#### ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और वैचारिक आधार

भारतीय राजनीति में महिलाओं की भागीदारी का इतिहास स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ा है। एनी बेसेंट और विजयलक्ष्मी पंडित ने अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारत का प्रतिनिधित्व किया। स्वतंत्र भारत में इंदिरा गांधी का प्रधानमंत्री पद तक पहुँचना भारतीय राजनीति में महिला नेतृत्व की ऐतिहासिक उपलब्धि थी।

नारीवादी राजनीतिक सिद्धांतों उदारवादी नारीवाद, समाजवादी नारीवाद और उत्तर-आधुनिक नारीवाद ने यह स्थापित किया कि राजनीतिक सशक्तिकरण केवल विधिक समानता से संभव नहीं, बल्कि संरचनात्मक बदलाव आवश्यक हैं।

#### 21वीं सदी में उभरते स्वरूप के आयात

**संवैधानिक और विधिक प्रावधान :** 73वें और 74वें संविधान संशोधनों के माध्यम से पंचायत और नगर निकायों में महिलाओं के लिए न्यूनतम 33 प्रतिशत आरक्षण सुनिश्चित किया गया, जिसे कई राज्यों ने 50% तक बढ़ाया। इससे लाखों महिलाएँ स्थानीय शासन में शामिल हुईं। हाल ही में पारित नारी शक्ति वंदन अधिनियम, 2023 (महिला आरक्षण विधेयक) ने संसद और विधानसभाओं में 33% आरक्षण का मार्ग प्रशस्त किया है, जो राष्ट्रीय राजनीति में संरचनात्मक परिवर्तन का संकेत देता है।

**राजनीतिक प्रतिनिधित्व का विस्तार :** 21वीं सदी में लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं की संख्या धीरे-धीरे बढ़ी है। 2019 की 17वीं लोकसभा में अब तक की सर्वाधिक महिला सांसद निर्वाचित हुईं। राजनीतिक दलों ने भी महिला नेतृत्व को बढ़ावा देने की रणनीतियाँ अपनाई हैं। उदाहरणतः भारतीय जनता पार्टी, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और तृणमूल कांग्रेस ने महिला मोर्चा या महिला विंग के माध्यम से राजनीतिक प्रशिक्षण और नेतृत्व विकास को प्रोत्साहित किया है।

**नेतृत्व शैली और नीति-निर्माण में परिवर्तन :** महिला नेतृत्व को प्रायः संवेदनशील, सहभागी और कल्याणकारी दृष्टिकोण से जोड़ा जाता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण और सामाजिक सुरक्षा जैसे मुद्दों को प्राथमिकता देने में महिला नेताओं की सक्रिय भूमिका देखी गई है। निर्मला सीतारमण द्वारा प्रस्तुत बजटों में महिला-उन्मुख योजनाओं पर विशेष ध्यान, तथा ममता बनर्जी द्वारा कन्याश्री जैसी योजनाओं का संचालन इस प्रवृत्ति को दर्शाता है।

**जमीनी लोकतंत्र में परिवर्तन :** पंचायती राज संस्थाओं में महिला प्रतिनिधियों की बढ़ती संख्या ने ग्रामीण राजनीति की प्रकृति बदली है। कई अध्ययन दर्शाते हैं कि महिला प्रधानों ने पेयजल, शिक्षा और स्वास्थ्य पर अधिक ध्यान दिया। हालाँकि, 'सरपंच पति' जैसी चुनौतियाँ भी सामने आईं, जहाँ वास्तविक सत्ता पुरुष रिश्तेदारों के हाथ में रही। फिर भी, यह चरण राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण हिस्सा है।

**डिजिटल और मीडिया प्रभाव :** सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म जैसे Twitter और Facebook ने महिला नेताओं को सीधे जनता से संवाद का अवसर दिया। इससे पारंपरिक मीडिया संरचनाओं पर निर्भरता कम हुई और वैकल्पिक राजनीतिक विमर्श विकसित हुआ। डिजिटल प्लेटफॉर्म ने महिलाओं के लिए अभियान चलाने, समर्थन जुटाने और जनमत निर्माण के नए अवसर प्रदान किए।

#### चुनौतियाँ

- पितृसत्तात्मक मानसिकता : सामाजिक पूर्वाग्रह अब भी महिला नेतृत्व को चुनौती देते हैं।
- राजनीतिक हिंसा और ट्रोलिंग : डिजिटल युग में लैंगिक अपमान और ऑनलाइन हिंसा बढ़ी है।
- आर्थिक संसाधनों की कमी : चुनावी राजनीति में धन और नेटवर्क की आवश्यकता महिलाओं के लिए बाधक बनती है।
- दलगत संरचनाओं में असमानता : राजनीतिक दलों के उच्च निर्णयकारी मंचों पर महिलाओं की संख्या अभी भी सीमित है।

### समकालीन प्रवृत्तियाँ

- युवा महिलाओं की राजनीति में बढ़ती भागीदारी
- छात्र राजनीति और नागरिक आंदोलनों में सक्रिय उपस्थिति
- लैंगिक मुद्दों का मुख्यधारा राजनीतिक विमर्श में समावेश
- महिला मतदाताओं की निर्णायक भूमिका

आज कई राज्यों में महिला मतदाता प्रतिशत पुरुषों के बराबर या उससे अधिक है, जो चुनावी रणनीतियों को प्रभावित कर रहा है।

### साहित्य समीक्षा

21वीं सदी में भारतीय राजनीति में महिला सशक्तिकरण पर अकादमिक विमर्श बहुआयामी रूप में विकसित हुआ है। समकालीन शोध प्रतिनिधित्व, नीतिगत हस्तक्षेप, स्थानीय स्वशासन, दलगत संरचना, चुनावी भागीदारी तथा डिजिटल राजनीतिक सक्रियता जैसे आयामों को समेटता है, विश्लेषण प्रस्तुत है –

**अमर्त्य कुमार सेन (2024)**, इन्होंने 'क्षमता दृष्टिकोण' के माध्यम से यह प्रतिपादित किया कि महिला सशक्तिकरण विकास का केंद्रीय तत्व है। राजनीतिक भागीदारी को उन्होंने मानव विकास का अनिवार्य घटक माना।<sup>1</sup>

**निरजा गोपाल जयाल (2023)**, जयाल ने भारतीय लोकतंत्र में नागरिकता, प्रतिनिधित्व और लैंगिक समानता के अंतर्संबंधों का विश्लेषण करते हुए यह प्रतिपादित किया कि महिला आरक्षण केवल संख्यात्मक वृद्धि का साधन नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक पुनर्संरचना का उपकरण है। उन्होंने संसद में महिलाओं की भागीदारी को लोकतांत्रिक वैधता से जोड़ा।<sup>2</sup>

**जोया हसन (2022)**, हसन ने भारतीय राजनीति में दलगत संरचनाओं और चुनावी प्रक्रियाओं में महिलाओं की स्थिति का अध्ययन करते हुए यह दर्शाया कि राजनीतिक दलों की आंतरिक संरचना अब भी पुरुष-प्रधान है। उन्होंने महिला आरक्षण विधेयक के सामाजिक-राजनीतिक प्रभावों की समीक्षा की।<sup>3</sup>

**निवेदिता मेनन (2021)**, मेनन ने नारीवादी राजनीतिक सिद्धांत के आलोक में भारतीय राज्य और पितृसत्तात्मक सत्ता-संरचना का विश्लेषण किया। उनके अनुसार, राजनीतिक सशक्तिकरण को केवल विधायी प्रतिनिधित्व तक सीमित नहीं किया जा सकता है इसे सामाजिक-सांस्कृतिक विमर्श से भी जोड़ना आवश्यक है।<sup>4</sup>

**बीना अग्रवाल (2018)**, अग्रवाल ने स्थानीय शासन में महिलाओं की भागीदारी और सामुदायिक संसाधन प्रबंधन के बीच संबंधों का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि पंचायत स्तर पर महिला नेतृत्व ग्रामीण विकास की प्राथमिकताओं को बदलने में सक्षम रहा है।<sup>5</sup>

**शोशाना जुबॉफ (2019)**, इन्होंने डिजिटल पूंजीवाद और निगरानी संस्कृति के संदर्भ में सत्ता-संरचनाओं का विश्लेषण किया। भारतीय राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में यह विमर्श महिलाओं की डिजिटल राजनीतिक भागीदारी और ऑनलाइन हिंसा को समझने में उपयोगी सिद्ध हुआ है।<sup>6</sup>

**गीता सेन (2017)**, सेन ने लैंगिक समानता, सार्वजनिक नीति और विकास के प्रश्नों को जोड़ते हुए यह स्पष्ट किया कि महिला सशक्तिकरण राजनीतिक इच्छा-शक्ति और संस्थागत समर्थन पर निर्भर करता है। उनका अध्ययन नीति-निर्माण में लैंगिक दृष्टिकोण की आवश्यकता पर बल देता है।<sup>7</sup>

**मंजरी मिश्रा (2013)**, मिश्रा ने राजनीतिक दलों में महिला भागीदारी और चुनावी टिकट वितरण की असमानताओं का अध्ययन किया। उनके अनुसार, दलगत राजनीति में संरचनात्मक परिवर्तन के बिना महिला सशक्तिकरण अधूरा रहेगा।<sup>8</sup>

**नीलिमा चौधरी (2015)**, चौधरी ने उत्तर भारत की पंचायती राज संस्थाओं में महिला प्रतिनिधियों के अनुभवों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत किया। उन्होंने 'सरपंच पति' जैसी प्रवृत्तियों को रेखांकित करते हुए राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया को समझाया।<sup>9</sup>

**राजनी कोठारी (2001)**, इन्होंने भारतीय लोकतंत्र की संरचनात्मक चुनौतियों पर विचार करते हुए सहभागितापूर्ण लोकतंत्र की आवश्यकता को रेखांकित किया। उनका विश्लेषण महिला प्रतिनिधित्व के लिए वैचारिक आधार प्रदान करता है।<sup>10</sup>

### उद्देश्य

1. 21वीं सदी में भारतीय राजनीति में महिला सशक्तिकरण के उभरते स्वरूप का विश्लेषण करना।
2. संसद, विधानसभाओं तथा पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के प्रतिनिधित्व की प्रकृति और प्रभाव का अध्ययन करना।

3. महिला आरक्षण नीति (विशेषतः नारी शक्ति वंदन अधिनियम, 2023) के संभावित सामाजिक-राजनीतिक प्रभावों का मूल्यांकन करना।
4. राजनीतिक दलों की संरचना एवं निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी की स्थिति का परीक्षण करना।
5. डिजिटल मीडिया और नई संचार तकनीकों के माध्यम से महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता के आयामों का अध्ययन करना।
6. महिला नेतृत्व के नीति-निर्माण, कल्याणकारी योजनाओं और लोकतांत्रिक संस्कृति पर प्रभाव का विश्लेषण करना।

#### परिकल्पना

1. 21वीं सदी में संवैधानिक और विधिक प्रावधानों के कारण भारतीय राजनीति में महिलाओं की भागीदारी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है।
2. स्थानीय स्वशासन संस्थाओं में आरक्षण ने महिलाओं के राजनीतिक समाजीकरण और नेतृत्व क्षमता को सुदृढ़ किया है।
3. संसद और विधानसभाओं में महिलाओं की बढ़ती उपस्थिति से सामाजिक कल्याण और लैंगिक न्याय से संबंधित नीतियों को अधिक प्राथमिकता मिली है।
4. राजनीतिक दलों की आंतरिक संरचना अब भी पुरुष-प्रधान होने के कारण महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया पूर्णतः संतुलित नहीं हो सकी है।
5. डिजिटल मीडिया ने महिलाओं की राजनीतिक अभिव्यक्ति और जनसंपर्क को सशक्त किया है, परंतु इसके साथ ऑनलाइन लैंगिक हिंसा की चुनौतियाँ भी बढ़ी हैं।

**निष्कर्ष-** 21वीं सदी में भारतीय राजनीति में महिला सशक्तिकरण का स्वरूप बहुआयामी, गतिशील और संरचनात्मक परिवर्तन की दिशा में अग्रसर दिखाई देता है। पंचायत स्तर पर आरक्षण व्यवस्था ने जमीनी लोकतंत्र में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित की, जिससे नेतृत्व के नए आयाम विकसित हुए। राष्ट्रीय स्तर पर महिला नेताओं की सक्रिय उपस्थिति ने यह स्पष्ट किया है कि महिलाएँ केवल प्रतीकात्मक प्रतिनिधि नहीं, बल्कि प्रभावी नीति-निर्माता भी हैं। हालाँकि, पितृसत्तात्मक मानसिकता, संसाधनों की असमान उपलब्धता, दलगत राजनीति में सीमित अवसर तथा राजनीतिक हिंसा जैसी चुनौतियाँ अब भी विद्यमान हैं। इसके बावजूद महिला मतदाताओं की बढ़ती भागीदारी, शिक्षा के प्रसार और डिजिटल सक्रियता ने राजनीतिक परिदृश्य को अधिक समावेशी बनाया है।

इस प्रकार, महिला सशक्तिकरण भारतीय लोकतंत्र की गुणवत्ता, उत्तरदायित्व और सामाजिक न्याय की स्थापना का महत्वपूर्ण आधार बन चुका है। भविष्य में यदि शिक्षा, आर्थिक आत्मनिर्भरता और राजनीतिक प्रशिक्षण को और सुदृढ़ किया जाए, तो यह प्रक्रिया भारतीय राजनीति को अधिक संतुलित और संवेदनशील दिशा प्रदान करेगी।

#### संदर्भ सूची

1. सेन, अमर्त्य कुमार (2024), तर्कशील भारतीय, नई दिल्ली, पेंगुइन बुक्स इंडिया।
2. जयाल, निरजा गोपाल (2023) नागरिकता और लोकतंत्र: भारतीय परिप्रेक्ष्य, नई दिल्ली, हार्वर्ड विश्वविद्यालय प्रेस (भारतीय संस्करण)।
3. हसन, जोया (2022), भारतीय राजनीति में दलगत संरचना और लैंगिक प्रश्न, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस।
4. मेनन, निवेदिता (2021), नारीवादी दृष्टि से राजनीति का पुनर्पाठ, नई दिल्ली, पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया।
5. अग्रवाल, बीना (2018), लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण : भारत के संदर्भ में अध्ययन, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस।
6. जुबॉफ, शोशाना (2019), निगरानी पूँजीवाद का युग, नई दिल्ली, पब्लिकअफेयर्स (भारतीय संस्करण)।
7. सेन, गीता (2017), विकास, नीति और लैंगिक न्याय, नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशन्स।
8. मिश्रा, मंजरी, (2013), भारतीय दलगत राजनीति में महिलाओं की भागीदारी, नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशन्स।
9. चौधरी, नीलिमा (2015) पंचायती राज और महिला नेतृत्व: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, जयपुर, रावत पब्लिकेशन्स।
10. कोठारी, राजनी (2001), लोकतंत्र का पुनर्विचार, नई दिल्ली, ओरिएंट लॉन्गमैन।

## गोपालतापिन्योपनिषद् में श्रीकृष्ण का परमदेवत्व एवं स्वरूप विवेचन

हिमाद्रि शिवहरे\*

उपनिषद् वह आध्यात्मविद्या है जो भारतीय दर्शन की अनेक शाखाओं को आधार प्रदान करता है। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य आदि आचार्यों के दार्शनिक परिप्रेक्ष्य का जो मूल है वह भारतीय ज्ञान परम्परा की अमूल्य निधि उपनिषद् से ही विकसित हुआ है। उपनिषद्, दार्शनिक चिन्तन के उच्चतम शिखर पर स्थित वे ग्रन्थ हैं, जिनमें भौतिकवादी दृष्टिकोण से परे ब्रह्म और आत्मा के रहस्य पर गूढ़ चिन्तन किया गया है। परम्परागत रूप से उपनिषदों को निर्गुण ब्रह्म के चिन्तन का शिखर माना जाता है, परन्तु कालान्तर में प्रवाहित होने वाली भक्ति की अविकल धारा के फलस्वरूप उपनिषदों में सगुण ब्रह्म की अवधारणा भी सम्मिलित की गयी। भक्ति की इसी परम्परा में वैष्णव उपनिषद् अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं, जो विष्णु को परब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठित कर भक्तजनों की आध्यात्मिक उन्नति तथा मोक्ष की प्राप्ति हेतु निष्काम भाव से प्रेम तथा भक्तिरूपी सीढ़ी को मध्यस्थ बना शरणागतिरूपी मार्ग प्रशस्त करते हैं।

वैष्णव उपनिषद् वेदान्त की उस धारा को परिलक्षित करते हैं जहाँ भगवत्स्वरूप ब्रह्म का प्रतिपादन हुआ है। इनमें ब्रह्म के निराकार नहीं अपितु साकार रूप दृष्ट होते हैं, जिनमें विशेष रूप से विष्णु या उनके अवतार जैसे श्रीकृष्ण या श्रीराम के भक्ति मार्ग को केन्द्र में रखा गया है। इसी शृंखला में गोपालतापिन्योपनिषद् अपना विशिष्ट स्थान रखता है। अथर्ववेद से सम्बद्ध यह उपनिषद् श्रीकृष्ण को मात्र अवतार रूप में नहीं अपितु परब्रह्म के रूप में स्थापित करता है। यहाँ कृष्ण शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है-

“कृषिर्भूवाचकः शब्दो नश्च निर्वृत्तिवाचकः ।  
तयोरेक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥”<sup>1</sup>

अर्थात् भूवाचक शब्द कृषि तथा निर्वृत्तिवाचक शब्द नकार का जो ऐक्य परब्रह्म है वही कृष्ण है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में गूढ़ दार्शनिक तथ्यों का समायोजन मिलता है जहाँ पर श्रीकृष्ण के सगुण-साकार स्वरूप, भक्ति, मन्त्र-साधना और योग-चिन्तन का अद्भुत समन्वयन प्राप्त होता है।

प्रारम्भ से ही यह जिज्ञासा मानव मस्तिष्क को इस गूढ़ चिन्तन के लिये प्रेरित करती रही है कि सृष्टि के संचालन के लिए वह कौन सी दिव्यशक्ति है जो निरन्तर कार्य कर रही है? प्रारम्भ में क्या था? जब न असत् था न ही सत् था, न कोई लोक था, न आकाश था, तब वह कौन सी शक्ति थी जिससे जीवनचक्र प्रारम्भ हुआ? इस प्रकार की जिज्ञासा वेदों में भी दृष्ट होती है-

“नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं, नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।

किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्बहनं गभीरम् ॥ १ ॥”<sup>2</sup>

गोपालतापिन्योपनिषद् में भी इसी प्रकार की जिज्ञासा दृष्टिगत होती है जब मुनियों द्वारा परमदेव के विषय में ब्रह्मा से इस प्रकार प्रश्न किया जाता है -

“कः परमो देवः । कुतो मृत्युर्बिभेति । कस्य विज्ञानेनाखिलं विज्ञातं भवति । केनेदं विश्वं संसरतीति ॥ २ ॥”<sup>3</sup>

इस प्रकार मुनियों द्वारा पूछे जाने पर ब्रह्मा कहते हैं-

“कृष्णो वै परमं दैवतम् । गोविन्दान्मृत्युर्बिभेति । गोपीजनवल्लभज्ञानेनैतद्विज्ञातं भवति । स्वाहेदं विश्वं संसरतीति ॥ ३ ॥”<sup>4</sup>

\* शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, मो. 8924889090,  
ई-मेल:shivharehimadri@gmail.com

अर्थात् कृष्ण ही सर्वोच्च उपास्य तत्त्व हैं। गोविन्द की सत्ता इतनी परात्पर है कि मृत्यु भी उनके अधीन एवं भयग्रस्त रहती है। गोपीजनवल्लभ उस अद्वितीय पुरुष के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो जाने पर समस्त तत्त्वों का बोध स्वतः संपन्न हो जाता है। इसी प्रकार स्वाहारूपी मायाशक्ति के माध्यम से ही यह जगत् निरन्तर प्रवाहमान एवं आवर्तित अस्तित्व में स्थित है। अन्यत्र पुरुषसूक्त से यह ज्ञात होता है कि इस दृश्यमान जगत्, तथा जो पूर्व में हो चुका है और जो भविष्य में होने वाला है, सबका आधिपति पुरुष ही है-

“पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्॥२॥”<sup>5</sup>

यहाँ जिस पुरुष की बात हो रही है वह श्रीकृष्ण ही हैं ऐसा संकेत श्रीकृष्णयामलमहातन्त्रम् में मिलता है जहाँ पर समस्त ब्रह्माण्ड का उस पुरुष के प्रत्येक रोम में स्थिति का वर्णन मिलता है।-

“प्रतिलोमन्यभवंस्तत्र ब्रह्माण्डान्यन्तराणि वै॥”<sup>6</sup>

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण स्वयं को इस जगत् की उत्पत्ति का कारण बताते हुए कहते हैं-

“अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।

इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः॥”<sup>7</sup>

अर्थात् समस्त जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण मैं वासुदेव ही हूँ तथा सम्पूर्ण सृष्टि की समस्त गतिशीलता भी मुझसे ही प्रवर्तित होती है। इस तात्त्विक सत्य का यथार्थ बोध होने पर श्रद्धा और भक्ति से सम्पन्न भक्तजन मुझ परमेश्वर की निरन्तर भक्ति में अनन्य भाव से लीन हो जाते हैं।

अपनी योगमाया में छिपे हुये श्रीकृष्ण को अज्ञानी मनुष्य नहीं जान पाते और जन्मने-मरने वाला समझते हैं, क्योंकि वह सबके लिये प्रत्यक्ष नहीं हैं। ऐसे अपने अगम्य, अगोचर तथा गूढ़ स्वरूप के विषय में श्री कृष्ण कहते हैं-

“नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।

मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥”<sup>8</sup>

श्री कृष्ण अपने आदिस्वरूप को इस प्रकार कहते हैं-

“न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।

अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥”<sup>9</sup>

अर्थात् मेरे प्राकट्य का यथार्थ न देवगण जानते हैं और न ही महर्षिगण जानते हैं, क्योंकि मैं ही समस्त रूपों में देवताओं तथा महर्षियों का भी आदि कारण हूँ।

गोपालतापिन्योपनिषद् में श्रीकृष्ण द्वारा सर्वप्रथम ब्रह्मा की उत्पत्ति के विषय में इस प्रकार प्राप्त होता है-

“यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो विद्यां तस्मै गोपायति स्म कृष्णः ।

तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुः शरणं व्रजेत्॥२२॥”<sup>10</sup>

ओङ्कारेणान्तरितं ये जपन्ति गोविन्दस्य पञ्चपदं मनुम् ।

तेषामसौ दर्शयेदात्मरूपं तस्मान्मुमुक्षुरभ्यसेन्नित्यशान्त्यै॥२३॥”<sup>11</sup>

जिन श्रीकृष्ण को ब्रह्मा की उत्पत्ति का आदिकारण तथा उनके प्रति आद्यविद्या के उपदेशक के रूप में निरूपित किया गया है, उन बुद्धिप्रकाशक परम पुरुष की शरणागति ही मुमुक्षु के लिए अपेक्षित मानी गई है। यह भी प्रतिपादित है कि जो साधक ओंकार सहित गोविन्द के पञ्चपद मन्त्र का जप करते हैं, उनके प्रति वे स्वयं अपने यथार्थ स्वरूप का उद्घाटन करते हैं। अतः नित्यशान्ति की प्राप्ति के अभिलाषी मुमुक्षु के लिए ओंकारयुक्त पञ्चपद मन्त्र का सतत् अभ्यास अनिवार्य साधन के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। इस पञ्च पदात्मक मन्त्र में सम्पूर्ण विश्व समाहित है। इस मन्त्र को जपने वाला मनुष्य ब्रह्म को प्राप्त कर, ब्रह्मरूप ही हो जाता है।

“क्लीमित्येतदादावादाय कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभायेति बृहन्भानव्या सकृदुच्चरेद्योऽसौ गतिस्तस्यास्ति मङ्क्षु नान्या गतिः स्यादिति॥१३॥”<sup>12</sup>

यहाँ पञ्चपदात्मक मन्त्र के द्वारा ही कृष्ण से संयोग होने की बात मिलती है तथा इसके अतिरिक्त कोई गति नहीं है।

“वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो जन्येजन्ये पञ्चरूपो बभूव ।

कृष्णस्तथैकोऽपि जगद्धितार्थं शब्देनासौ पञ्चपदो विभातीति॥१६॥”<sup>13</sup>

जिस प्रकार से एक ही वायु सम्पूर्ण भुवनों में प्रवेश कर प्रत्येक प्राणी के प्राणापानादि पाँच प्राणों का रूप धारण कर प्रतिष्ठित हो जाती है वैसे ही जगत् के कल्याणार्थ परब्रह्म श्रीकृष्ण इस पञ्चपदात्मक मन्त्र में शब्दरूप लेकर शोभायमान् हो रहे हैं।

कृष्ण कोई लौकिक व्यक्तित्व अथवा मात्र अवतार नहीं, अपितु वह परब्रह्म हैं जो सृष्टि, स्थिति तथा लय - इन तीनों शक्तियों के अधिष्ठाता हैं-

“सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायाक्लिष्टकर्मणे

नमो वेदान्तवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे॥१॥”<sup>14</sup>

अर्थात् वे सच्चिदानन्दमय हैं, तथा हमारे अन्तःकरण में साक्षी रूप में विराजमान हैं। अनायास ही सबकुछ कर सकने वाले सच्चिदानन्द स्वरूप, वेदान्त के द्वारा ही जाने जा सकने वाले, बुद्धि के साक्षीरूप परम गुरु ऐसे श्रीकृष्ण को नमस्कार है।

इस प्रकार श्रीकृष्ण की व्यापकता इतनी अद्भुत है कि वे हर प्रकार से व्याप्त हैं। सम्पूर्ण जगत् उनमें समाया हुआ है तथा वे स्वयं सभी जीवों के हृदय में वास करते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता के पुरुषोत्तम योग में श्रीकृष्ण कहते हैं-

“सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च। वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्॥”<sup>15</sup>

इस श्लोक से विदित होता है कि श्रीकृष्ण का स्वरूप सर्वव्यापक है। यहाँ प्रभु की अनन्य सत्ता, सर्वज्ञता को प्रतिपादित किया गया है तथा उन्हें वेदों के अन्तिम लक्ष्य के रूप में व्याख्यायित किया गया है। वे स्वयं समस्त जीवों के अन्तःकरण में विराजमान होकर उन्हें स्मृति तथा ज्ञान देते हैं। परमतत्त्व श्रीकृष्ण की प्राप्ति हेतु ही वेदशास्त्र का अध्ययन किया जाता है। इसीलिये गीता में कहा गया- ‘वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो’ अर्थात् मैं ही सभी वेदों का विषय हूँ। यहाँ यह स्पष्ट होता है कि वे विषय तथा लक्ष्य दोनों ही हैं। वे स्वयं वेदस्वरूप है। वैष्णव उपनिषदों, भगवद्गीता, पुराण तथा महाभारत सभी जगह यह भाव प्रदर्शित होता है। ब्रह्मसंहिता में भी श्रीकृष्ण को परम नियन्ता कहा गया है-

“ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।

अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥”<sup>16</sup>

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण को पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर कहा गया है। श्रीकृष्ण अर्जुन से स्वयं कहते हैं-

“मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जयः॥”<sup>17</sup>

यहाँ पर जिस परमब्रह्म की बात की जा रही है वह सम्पूर्ण संसार के सृष्टा श्रीकृष्ण ही है, जैसा कि श्रीकृष्णयामलमहातन्त्रम् से ज्ञात होता है-

“यद्ब्रह्म परमं सूक्ष्मं स कृष्ण इति कथ्यते ।

एकः कृष्णो द्विधाभूतो मुमुक्षुभजनैषिणोः ॥२६॥”<sup>18</sup>

उपकाराय शुद्धात्मा वेदविक्रिचः स गीयते ।

मुक्तो ब्रह्मपदं याति तदङ्गं ज्योतिरुत्तमम् ॥२७॥”<sup>19</sup>

भक्तः कृष्णपदं साक्षात् सेवतेऽमलया धिया ।

ज्योतीरूपं तु मुक्तानां भक्तानां द्विभुजाकृतिः ॥२८॥”<sup>20</sup>

अर्थात् दो भुजाओं वाले श्रीकृष्ण ही अपने भक्तों के अनुरूप दो रूपों में उन्हें शरणागति प्रदान करते हैं। मुमुक्षुजन श्रीकृष्ण में विलीन हो उनके ज्योतिस्वरूप अङ्ग बन जाते हैं तथा उनके सगुण साकार स्वरूप की आराधना करने वाले भक्त श्रीकृष्ण के चरणकमलों की सेवा करते हैं।

इसी भगवत्सेवा के विरह होने के भय से कृष्णभक्त मोक्ष की इच्छा न कर श्रीकृष्ण के चरणों की सेवा करते हुये गोलोक प्राप्ति की कामना करते हैं-

“संसारिकाणामेतत्तु निर्वाणमोक्षणं विदुः।

नैच्छन्ति वैष्णवास्तत्तु सेवाविरहकातराः ॥७०॥”<sup>21</sup>

गोपालतापिन्योपनिषद् में भी गोप वेष धारण किए हुए काले बादलों की सी कान्ति वाले तथा कल्प वृक्ष के नीचे खड़े श्रीकृष्ण के रूप का वर्णन मुनियों के समक्ष ब्रह्मा द्वारा इस प्रकार से प्राप्त होता है-

“सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्बरम् ।

द्विभुजं ज्ञानमुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरम् ॥८॥”<sup>22</sup>

गोपगोपाङ्गनावीतं सुरद्रुमतलाश्रितम् ।

दिव्यालंकरणोपेतं रत्नपङ्कजमध्यगम् ॥९॥”<sup>23</sup>

कालिन्दीजलकल्लोलसङ्गिमारुतसेवितम् ।

चिन्तयंश्चेतसा कृष्णं मुक्तो भवति संसृतेः ॥१०॥”<sup>24</sup>

श्रीकृष्ण का स्वरूप श्वेत विकसित कमल के समान प्रसन्न नेत्रों से सुशोभित है। उनकी कान्ति मेघ के सदृश श्यामल है तथा वे विद्युत् समान द्युति से दीप्त वस्त्र धारण करते हैं। वे द्विभुज रूप में, ज्ञानमुद्रा से अलंकृत होकर, वन्य पुष्पमालाओं से विभूषित ईश्वर रूप में प्रतिष्ठित हैं। वे गोप, गोपियों तथा गौओं से परिवेष्टित रहते हैं। कल्पवृक्ष के अधःस्थित, दिव्य आभूषणों से अलंकृत, रत्नमय कमलों के मध्य विराजमान, तथा कालिन्दी के जलतरंग स्पर्शित पवन द्वारा सेवित ऐसे भगवान् कृष्ण का मनसा नित्य चिन्तन किया जाना चाहिए। इस प्रकार का ध्यान साधक को संसारबन्धन से विमुक्त कर मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर करता है। श्रीकृष्ण की पूजा तथा आराधना विद्वज्जन् अनेक विधियों से करते हैं-

“कृष्णं तं विप्रा बहुधा यजन्ति गोविन्दं सन्तं बहुधाऽऽराधयन्ति ॥१५॥”<sup>25</sup>

कुछ भक्तजन उनके नामजप से भक्ति करते हैं, कुछ उनकी उपासना साक्षात् सच्चिदानन्द ब्रह्मरूप मानकर करते हैं, कोई उनकी भक्ति उन्हें गोविन्दरूप में आराध्य मानकर करता है तो कोई कर्मकाण्ड तथा ज्ञान आदि से प्रभु की सेवा करता है। प्रभु के इतने स्वरूप है कि साधक अपनी श्रद्धानुसार भिन्न-भिन्न रूपों में उनकी पूजा करता है। ऋग्वेद का वेदवाक्य- ‘एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति’ यह प्रतिपादित करता है कि वह एक ही सत्य, परम तत्त्व है, जिसका विद्वान् जन अनेकों रूपों तथा अनेकों नामों में वर्णन करते हैं। गोपालतापिन्योपनिषद् का उक्त कथन- ‘कृष्णं तं विप्रा बहुधा यजन्ति’ यह बताता है कि वह एक सत्य, वह परम तत्त्व श्रीकृष्ण ही हैं। गोपालतापिन्योपनिषद् में अन्यत्र यही बात पुनः इस रूप में वर्णित है-

“एको वशी सर्वगः कृष्ण इड्य एकोऽपि सन्बहुधा यो विभाति ॥१९॥”<sup>26</sup>

सबको अपने वश में रखने वाले जो एकमात्र हैं, सबके स्वामी और नियंत्रक हैं, जो सर्वव्यापक हैं, पूजनीय हैं, वही श्रीकृष्ण, एक होते हुए भी अनेक रूपों में प्रकट होते हैं और विभिन्न रूपों में प्रकाशित होते हैं। यह श्लोक श्रीकृष्ण के अद्वैत स्वरूप में सगुण और निर्गुण दोनों पक्षों को समाहित करता है।

गोपालतापिन्योपनिषद् में श्रीकृष्ण की परमसत्ता को द्योतित करते हुये कहा गया है-

“एतद्विष्णोः परमं पदम् ॥२१॥”<sup>27</sup>

अर्थात् भगवान् विष्णु का भी जो ब्रह्मस्वरूप अथवा परम पद है वह उनके गोपालस्वरूप में प्रकट होता है। यह स्वरूप भौतिक जगत् से परे है, जिसे भक्ति द्वारा ही जाना जा सकता है। यह श्लोक श्रीकृष्ण को विष्णु से भी उच्च परब्रह्म रूप में स्थापित कर सर्वोच्च स्थान प्रदान करता है। श्रीकृष्णयामलमहातन्त्रम् में भी श्रीकृष्ण की सर्वोच्च स्थिति दर्शाते हुये महाविष्णु को उनके अंशरूप में स्थापित किया गया है-

“महाविष्णोर्महाभागे कृष्णांशांशभवस्य च।

पुरैवासन् महाविष्णोर्मुखेभ्यस्तु सनातनाः ॥”<sup>28</sup>

अर्थात् श्रीकृष्ण के अंश के अंश से महाविष्णु उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार यह गोपालतापिन्योपनिषद् श्रीकृष्ण की भक्ति, तथा पञ्चपद के जाप द्वारा श्रीकृष्ण के ब्रह्मस्वरूप का उद्घाटन कर कैवल्यपद की प्राप्ति कराने वाला है।

“अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आपुवन्पूर्वमर्षदिति ॥४८॥<sup>29</sup>

तस्मात्कृष्ण एव परमो देवस्तं ध्यायेत् तं रसयेत् तं भजेत् तं भजेदित्यो तत्सदित्युपनिषत् ॥४९॥<sup>30</sup>

वह परमपद एक है जो स्वयं अचल होते हुए भी मन से अधिक वेगवान है। इन्द्रियाँ उसे प्राप्त नहीं कर सकतीं, क्योंकि वह उनके ज्ञानगम्य क्षेत्र से सर्वथा परे है। अतः वही श्रीकृष्ण परमदेव रूप में अभिज्ञेय हैं। उनका निरन्तर ध्यान, मनन तथा आस्वादन किया जाना चाहिए; उनका भजन ही साधना का परम मार्ग है। इस प्रकार “ॐ तत् सत्” के प्रतिपादन के साथ यही उपनिषद् का तात्पर्य निरूपित होता है।

#### सन्दर्भग्रन्थ-सूची :

- 1- गोपालतापिन्योपनिषद् १, उपनिषत्संश्रयनम्
- 2- नासदीयसूक्तम् (१०/१२९/१)
- 3- गोपालतापिन्योपनिषद्, २, उपनिषत्संश्रयनम्
- 4- वही, ३
- 5- पुरुषसूक्त (१०/९०/२)
- 6- श्रीकृष्णयामलमहातन्त्रम् (सान्वयज्ञानवतीभाषाटीकासंवलितम्), स० आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी, पृ०सं० ५७, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण २०१८
- 7- गीता (१०/८)
- 8- वही (७/२५)
- 9- वही (१०/२)
- 10- गोपालतापिन्योपनिषद्, २२, उपनिषत्संश्रयनम्
- 11- वही, २३
- 12- वही, १३
- 13- वही, १६
- 14- वही, १
- 15- श्रीमद्भगवद्गीता(१५/१५)
- 16- ब्रह्मसंहिता (५/१)
- 17- श्रीमद्भगवद्गीता (७/७)
- 18- श्रीकृष्णयामलमहातन्त्रम्, (सान्वयज्ञानवतीभाषाटीकासंवलितम्),स० आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी, श्लोक सं० २६, पृ०सं० १३६, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण २०१८
- 19- वही, २७
- 20- वही, २८
- 21- ब्रह्मवैवर्तपुराण, ३६/७० (प्रकृतिखण्ड)
- 22- गोपालतापिन्योपनिषद्, ८, उपनिषत्संश्रयनम्
- 23- वही, ९
- 24- वही, १०

- 25- वही, १५
- 26- वही, १९
- 27- वही, २१
- 28- श्रीकृष्णयामलमहातन्त्रम्, (सान्वयज्ञानवतीभाषाटीकासंवलितम्), स० आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी, पृ०सं० १३६, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 2018
- 29- गोपालतापिन्योपनिषद्, ४८, उपनिषत्संश्रयनम्
- 30- वही, ४९



## समकालीन परिदृश्य में हिंदी की चुनौतियाँ और संभावनाएँ

रंजेश कुमार गुप्ता\*

### सारांश

भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि एक जीवित सांस्कृतिक सत्ता, एक सामाजिक संरचना, एक ऐतिहासिक निरंतरता और एक मानसिक संसार भी है। हिंदी, जो विश्व की प्रमुख भाषाओं में गिनी जाती है, आज समकालीन वैश्विक परिदृश्य के ऐसे दौर से गुजर रही है जहाँ उसके सामने अभूतपूर्व चुनौतियाँ भी हैं और अपार संभावनाएँ भी। आलोचना के लिए यह समय जितना कठोर है, हिंदी के विस्तार और सुदृढीकरण के लिए उतना ही अनुकूल भी। एक ओर वैश्वीकरण, बाज़ारवाद, तकनीकी वर्चस्व, अंग्रेज़ी की प्रतिष्ठा और भाषाई राजनीति के दबाव हैं, तो दूसरी ओर हिंदी का डिजिटल विस्तार, साहित्यिक सृजन की विविधता, शिक्षा-व्यवस्था में बढ़ती भूमिका, जनसंख्या का आधार और सांस्कृतिक शक्ति उसके लिए सशक्त आधार निर्मित कर रहे हैं।

यह लेख हिंदी की वर्तमान स्थिति का बहुआयामी विश्लेषण करता है—साहित्य, मीडिया, शिक्षा, विज्ञान, तकनीक, बाज़ार, राजनैतिक विमर्श, सामाजिक यथार्थ और वैश्विक संदर्भ के मध्य और यह समझने का प्रयत्न करता है कि हिंदी कहाँ खड़ी है, किन दबावों से जूझ रही है, किन क्षेत्रों में आगे बढ़ रही है तथा भविष्य की राह क्या हो सकती है।

**बीज शब्द** : हिंदी, समकालीन परिदृश्य, चुनौतियाँ, संभावनाएँ, वैश्वीकरण, तकनीक, शिक्षा, मीडिया, बाज़ार, संस्कृति, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, विश्व हिंदी सचिवालय, भारतीय भाषा संस्थान, सी – डैक, राजभाषा विभाग, यूनेस्को, यू. एन. ओ.

भारत बहुभाषिक, बहुसांस्कृतिक और बहुजातीय देश है। यहाँ की विविधता ही इसकी पहचान है। इस बहुभाषीय समाज में हिंदी एक सशक्त संपर्क भाषा, राजभाषा और जनभाषा के रूप में उदित हुई है। संविधान के अनुच्छेद 343 ने हिंदी को राजभाषा का दर्जा प्रदान किया, जिससे हिंदी का संस्थागत विस्तार हुआ<sup>1</sup> किंतु यह भी एक सत्य है कि स्वतंत्रता के पश्चात हिंदी को वह स्थान सहज रूप से नहीं मिला, जिसकी अपेक्षा की जाती थी।

समकालीन युग में जब अंग्रेज़ी वैश्विक संचार की प्रमुख भाषा मानी जाती है, सूचना-प्रौद्योगिकी का युग भाषा-प्रयोग की नई दिशाएँ निर्धारित कर रहा है और बाज़ारवादी शक्तियाँ उपभोक्तावादी संस्कृति को पुष्ट कर रही हैं, तब हिंदी एक नई सामाजिक-भाषिक चुनौती का सामना कर रही है। दूसरी ओर, हिंदी विश्व की सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में शामिल है, डिजिटल दुनिया में इसका तेज़ी से विस्तार हुआ है, हिंदी साहित्य और सिनेमा विश्वभर में अपनी पहचान बना रहा है। इस प्रकार चुनौतियों के साथ-साथ संभावनाओं का भी समृद्ध संसार हिंदी के सामने खुला हुआ है।

### हिंदी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और विकास-यात्रा

हिंदी का विकास खड़ी बोली के आधार पर हुआ, जिसने अपभ्रंश, प्राकृत और संस्कृत के साथ-साथ विदेशी और देशज परंपरा को अपने भीतर समाहित किया। मध्यकालीन चरण में हिंदी साहित्य ने भक्ति और लोकपरक चेतना का प्रतिनिधित्व किया। आधुनिक काल में हिंदी राष्ट्रभाषा आंदोलन की केंद्रीय भाषा बनी और स्वतंत्रता संग्राम के दौरान यह राष्ट्रीय एकता के प्रतीक के रूप में उभरी।

20वीं सदी के उत्तरार्ध में हिंदी प्रशासन, साहित्य, शिक्षा और मीडिया की प्रमुख भाषा बनी। 21वीं सदी ने इसे डिजिटल माध्यम, सोशल मीडिया और तकनीकी प्लेटफॉर्म पर विस्तृत स्वरूप प्रदान किया। इस ऐतिहासिक यात्रा ने हिंदी को जनभाषा से वैश्विक भाषा बनने की दिशा में अग्रसर किया है, परंतु इस यात्रा में अनेक संघर्ष और अवरोध भी शामिल रहे हैं।

\* टी जी टी हिंदी, पी एम श्री जवाहर नवोदय विद्यालय, अमीरपुर, बडायला, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश. पिन : 245304  
मो. 9452333354, ई-मेल : ranjesh.gupta512@gmail.com

<sup>1</sup> <https://rajbhasha.gov.in/>, [https://rajbhasha.gov.in/hi/constitutional\\_provisions](https://rajbhasha.gov.in/hi/constitutional_provisions)

### साहित्य समीक्षा (पूर्ववर्ती अध्ययनों का अवलोकन)

विभिन्न विद्वानों, शोधकर्ताओं और भाषाविदों ने समय-समय पर हिंदी की स्थिति पर विमर्श किया है।

- प्रसिद्ध भाषाविदों ने माना कि हिंदी का सबसे बड़ा बल इसका बोलने वालों का विशाल समुदाय है। एथ्नोलॉग) २०२२, २५वाँ संस्करण (की प्रतिवेदन के अनुसार विश्वभर में हिन्दी को प्रथम और द्वितीय भाषा के रूप में बोलने वाले लोगों की संख्या के आधार पर हिन्दी विश्व की तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है।
- साहित्यकारों ने हिंदी की आत्मा को संस्कृति, संवेदना और लोकचेतना से जुड़ा बताया। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने भी हिंदी को राष्ट्र की आत्मा और एकता की कुंजी माना है।<sup>2</sup>
- समकालीन शोधों में यह पाया गया कि शिक्षा और तकनीक में अंग्रेज़ी के वर्चस्व के कारण हिंदी को प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है।
- हिंदी अपने ही क्षेत्र में उपेक्षा और न्यूनताबोध का शिकार रही है।
- हिंदी के प्रचार-प्रसार को समर्पित संस्थाएँ, डिजिटल प्लेटफॉर्म और मनोरंजन उद्योग ने हिंदी के प्रसार में अप्रत्याशित योगदान दिया है।

साहित्य समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि हिंदी के परिदृश्य को समझने के लिए सामाजिक-राजनीतिक,

आर्थिक, सांस्कृतिक और तकनीकी आयामों का समग्र विश्लेषण आवश्यक है।

### समकालीन हिंदी की प्रमुख चुनौतियाँ

#### 1. वैश्वीकरण और अंग्रेज़ी का वर्चस्व

वैश्वीकरण के युग में अंग्रेज़ी ज्ञान, रोज़गार और प्रतिष्ठा की भाषा के रूप में स्थापित हो चुकी है। रोज़गार-बाज़ार, उच्च शिक्षा, विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में अंग्रेज़ी का प्रभुत्व हिंदी के लिए चुनौती उत्पन्न करता है। वैश्विक धरातल पर अंग्रेज़ी का बोलबाला है। 'अंग्रेज़ी जानना आधुनिकता का प्रतीक'—यह मानसिकता हिंदी के आत्मविश्वास को प्रभावित करती है।

#### 2. शिक्षा-प्रणाली की विसंगतियाँ

भारत की शिक्षा-व्यवस्था में अभी भी अंग्रेज़ी माध्यम को श्रेष्ठ माना जाता है। हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों को प्रतियोगी परीक्षाओं, उच्च शिक्षा और पेशेवर क्षेत्रों में कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है। पाठ्यक्रमों में हिंदी का वैज्ञानिक और समकालीन रूप कम देखने को मिलता है। सरकार द्वारा किये जाने वाले प्रयास भी जमीनी स्तर पर ऊँट के मुह में जीरा की भाँति हैं।

#### 3. बाज़ारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति

विज्ञापन, ब्रांडिंग और कॉरपोरेट संवाद मुख्यतः अंग्रेज़ी प्रधान हैं। हिंदी अक्सर 'मिश्रित भाषा' या 'हिंग्लिश' के रूप में प्रयुक्त होने लगी है। इससे शुद्ध हिंदी की संरचना, शब्दावली और अभिव्यक्ति प्रभावित होती है। कई बार तो शुद्ध हिंदी हास्य का विषय भी बन जाती है।

#### 4. प्रशासनिक और न्यायिक व्यवस्था में सीमित प्रयोग

राजभाषा होने के बावजूद प्रशासन, न्यायालय और सरकारी तंत्र में हिंदी का पूर्णतः प्रयोग नहीं हो पाता। अनेक दस्तावेज़, नीतियाँ और संवाद अंग्रेज़ी में ही होते हैं। इससे भाषा के अधिकारिक सशक्तीकरण में बाधा आती है।

#### 5. डिजिटल युग की भाषा-चुनौतियाँ

हालाँकि इंटरनेट ने हिंदी को व्यापक मंच दिया है, परंतु इसके साथ कई चुनौतियाँ भी आई हैं—

- वर्तनी और व्याकरण की शिथिलता
- अधिकतर सामग्री का निम्न स्तर
- अंग्रेज़ी मिश्रित संचार
- तकनीकी शब्दावली के निर्माण की कमी

<sup>2</sup> <https://www.epitomejournals.com>

## 6. भाषाई हीन-भावना और मानसिकता का संकट

हिंदी के प्रति लोगों में गर्व से अधिक संकोच दिखाई देता है। अभिजात वर्ग में हिंदी का प्रयोग सीमित है। सामाजिक प्रतिष्ठा और भाषा के बीच बनी खाई हिंदी के आत्मगौरव को कमजोर करती है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने भी इस विकट संकट को अपनी कविता में व्यक्त किया है -

“निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल  
बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।।  
अंग्रेजी पढ़ि के जदपि, सब गुन होत प्रवीन  
पै निज भाषाज्ञान बिन, रहत हीन के हीन।।”<sup>3</sup>

## 7. क्षेत्रीय भाषाओं के साथ संतुलन का प्रश्न

हिंदी के सशक्तिकरण के साथ-साथ भारतीय भाषाओं का संरक्षण भी महत्वपूर्ण है। कई बार हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के बीच प्रतिद्वंद्विता का भ्रम पैदा किया जाता है, जो राष्ट्रीय भाषिक एकता के लिए चुनौती है।

### हिंदी की संभावनाएँ और उज्वल भविष्य

#### 1. विश्व-पटल पर हिंदी की बढ़ती प्रतिष्ठा

विश्व के अनेक देशों में हिंदी भाषी जनसंख्या बढ़ रही है। प्रवासी भारतीयों के कारण हिंदी का वैश्विक प्रसार हुआ है। विभिन्न अंतरराष्ट्रीय मंचों पर हिंदी का उपयोग बढ़ा है। विश्व की शीर्ष बोली जाने वाली भाषाओं में हिंदी लगातार अग्रणी स्थान पर है। मॉरीसस स्थित विश्व हिंदी सचिवालय विश्व पटल पर हिंदी को प्रोन्नत करने में अग्रणी भूमिका अदा कर रहा है।<sup>4</sup>

#### 2. डिजिटल माध्यम में हिंदी का विस्फोटक प्रसार

आज हिंदी इंटरनेट सामग्री, यूट्यूब, सोशल मीडिया, ब्लॉग, ई-न्यूज़, वेब सीरीज, ओटीटी प्लेटफॉर्म पर अभूतपूर्व रूप से उपस्थित है।

- हिंदी कंटेंट का उपभोग तेजी से बढ़ रहा है
- हिंदी में ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म उपलब्ध हैं
- हिंदी टाइपिंग, अनुवाद और एआई टूल्स और ऐप्स तेजी से विकसित हुए हैं

यह हिंदी को ज्ञान-भाषा बनने की दिशा में शक्ति प्रदान करता है।

#### 3. शिक्षा और अनुसंधान में हिंदी की संभावनाएँ

नई शिक्षा नीति ने मातृभाषा में शिक्षा पर बल दिया है। इससे हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों के लिए नई संभावनाएँ खुली हैं। हिंदी में विज्ञान, तकनीक, समाजशास्त्र, कानून और प्रबंधन जैसे क्षेत्रों में सामग्री तैयार की जा रही है। एन ई पी 2020 में स्पष्ट प्राविधान किया गया है यह नीति हिंदी भाषा के लिए मातृभाषा/स्थानीय भाषा में शिक्षा, त्रिभाषा सूत्र के लचीले कार्यान्वयन, और हिंदी को संपर्क व ज्ञान की भाषा के रूप में बढ़ावा देने का प्रावधान करती है, जिसमें प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक भारतीय भाषाओं के उपयोग और गुणवत्तापूर्ण हिंदी सामग्री के विकास पर जोर दिया गया है, ताकि बच्चे सहजता से सीखें और हिंदी का सामर्थ्य बढ़े।<sup>5</sup>

#### 4. साहित्य, सिनेमा और मीडिया का सशक्त संसार

हिंदी साहित्य अपनी विविधता, नवीन संवेदनाओं और यथार्थवादी दृष्टि के कारण निरंतर विकसित हो रहा है। हिंदी सिनेमा और धारावाहिकों ने हिंदी को जनभाषा ही नहीं, वैश्विक मनोरंजन की भाषा बना दिया है। पत्रकारिता में हिंदी का प्रभाव अत्यंत व्यापक है।

#### 5. राष्ट्रीय एकता की भाषा के रूप में हिंदी

हिंदी केवल संचार-माध्यम नहीं, बल्कि राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक समन्वय का माध्यम है। भारत जैसे बहुभाषिक राष्ट्र में संपर्क भाषा के रूप में हिंदी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।

<sup>3</sup> <https://www.amarujala.com/>

<sup>4</sup> <https://vishwahindi.com/>

<sup>5</sup> <https://www.google.com/>

### 6. तकनीकी शब्दावली और ज्ञान-निर्माण की संभावनाएँ

हिंदी में वैज्ञानिक शब्दावली विकसित हो रही है। विभिन्न संस्थाएँ तकनीकी शब्दकोश, अनुवाद उपकरण और डिजिटल लाइब्रेरी का निर्माण कर रही हैं। इससे हिंदी को ज्ञान के क्षेत्र में नया आयाम प्राप्त हो रहा है। भारतीय भाषा संस्थान, सी-डैक और केन्द्रीय हिंदी निदेशालय इस क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं।<sup>6</sup>

### 7. भविष्य की पीढ़ी और हिंदी का रचनात्मक परिदृश्य

युवा पीढ़ी रचनात्मकता के माध्यम से हिंदी को नई ऊर्जा दे रही है। कविता-मंच, कथा-लेखन, स्टाइलिश हिंदी, व्यंग्य, रैप-पोएट्री, ब्लॉगिंग, कंटेंट लेखन, ई-प्रकाशन, सोशल मीडिया आदि सभी ने हिंदी को नवीन रूप दिया है।

#### हिंदी के सशक्त भविष्य हेतु आवश्यक कदम

1. **नीतिगत दृढ़ता:** हिंदी का प्रसार प्रयोगशाला में नहीं बल्कि प्रयोग से सुनिश्चित होगा। अतः प्रशासन, न्यायालय, शिक्षा और सरकारी तंत्र में हिंदी के वास्तविक प्रयोग को सुनिश्चित किया जाए, इसके लिए केन्द्रीय हिंदी समिति, केन्द्रीय हिंदी निदेशालय और राजभाषा विभाग को और प्रभावी ढंग से कार्य करना होगा साथ ही हिंदी के प्रचार - प्रसार को प्रतिबद्ध अन्य व्यक्तियों/ संस्थाओं को प्रेरित भी करना होगा।
2. **गुणवत्तापरक सामग्री निर्माण:** अभी तक हिंदी में कोई ऐसी वेबसाइट या ऐप देखने का अवसर नहीं मिला है जिसमें हिंदी की गलतियाँ न हों ऐसे में सरकार से कदम से कदम मिलकर हम सभी को साहित्य, विज्ञान, तकनीक, कानून, चिकित्सा और प्रबंधन आदि विषयों पर उच्चस्तरीय सामग्री हिंदी में तैयार करना होगा।
3. **शिक्षा-व्यवस्था में सुधार:** हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों को प्रतिस्पर्धी अवसर प्रदान करना होगा, उच्च शिक्षा में हिंदी का विस्तार करना होगा, हिंदी का मानक रूप बालवाटिका से विश्वविद्यालय तक व्यवहृत करना होगा।
4. **तकनीकी विकास:** हिंदी की एआई, अनुवाद, आवाज पहचान, सॉफ्टवेयर और डिजिटल उपकरणों को सुदृढ़ करना होगा। आने वाले समय में हिंदी 'डेटा' की भाषा बनेगी। जिस भाषा के पास जितना बड़ा डेटा होगा, AI के युग में उसकी सत्ता उतनी ही मजबूत होगी। हिंदी का भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि वह तकनीक के साथ कितनी सहजता से कदम मिला पाती है।
5. **सामाजिक मानसिकता में परिवर्तन:** हिंदी के प्रति गर्व और सम्मान की भावना विकसित करना होगा और यह तय करना होगा कि 'माँ' और 'पिता' में जो ममत्व है क्या वह 'मम्मी' और 'डैडी' में है? 'बेटा' और 'बेटी' में जो अपनत्व है क्या वह 'सन' और 'डॉटर' में है?
6. **अंतरराष्ट्रीय प्रचार-प्रसार:** अन्य देशों में हिंदी केंद्र, पाठ्यक्रम और सांस्कृतिक गतिविधियों का विस्तार करना होगा। यूनेस्को की तरह यू. एन. ओ. में भी हिंदी को स्थान दिलाना होगा।
7. **हिंदी और भारतीय भाषाओं का सह-अस्तित्व:** हिंदी को राष्ट्रभाषा की तरह, परंतु अन्य भारतीय भाषाओं के सम्मान के साथ संतुलित रूप में विकसित करना समीचीन होगा। किसी भी भारतीय भाषा से हिंदी की प्रतिस्पर्धा या टकराव नहीं है किन्तु समस्त देश को एकता के सूत्र में पिरोने की शक्ति हिंदी में ही है। यह आजादी के पहले और बाद में भी स्वीकार किया गया है।
8. **हिंदी में अनुवाद:** जिस तरह हॉलीवुड की फिल्मों का हिंदी रूपांतर उपलब्ध है उसी तरह किसी भी अहिन्दी श्रेष्ठ साहित्य का हिंदी अनुवाद सहज उपलब्ध हो सके ऐसी व्यवस्था विकसित करनी होगी।
9. **महान लेखकों का स्मारक:** इंग्लैंड ने अपने महान लेखकों जैसे शेक्सपीयर, चार्ल्स डिकेंस आदि के बड़े भव्य स्मारक बनवा रखे हैं जिससे आम जनता को भाषा और साहित्य में रूचि विकसित करने की प्रेरणा मिलती है। भारत भी अपने महान लेखकों का स्मारक बनवाकर राष्ट्रीय गौरव का अनुभव कर सकता है।
10. **राज की भाषा के साथ-साथ काज की भाषा के रूप में विस्तार:** हिंदी का गुणगान करने वाले अधिकांश शिक्षक, साहित्यकार, समाजसेवी, नेता, अधिकारी, अभिनेता, कलाकार आदि सभी व्यवहारिक रूप से अंग्रेजी में अपना सारा कार्य-कलाप करते हैं। पिता 'डैडी' बनते जा रहे हैं और जन्म दिवस 'बर्थ डे' बनता जा रहा है। ऐसे में गाँधी जी का कथन अब फिर से दुहराना होगा कि " संसार को कह दो, गाँधी को अंग्रेजी नहीं आती है। "

<sup>6</sup> <https://www.ciil.org/>

**निष्कर्ष**

समकालीन परिदृश्य में हिंदी के सामने चुनौतियों का एक विस्तृत क्षेत्र अवश्य उपस्थित है, परंतु इन चुनौतियों के साथ-साथ अपार संभावनाएँ भी विद्यमान हैं। हिंदी केवल संवाद की भाषा नहीं, बल्कि संस्कृति, इतिहास, विचार और संवेदना की भाषा है। हिंदी आज केवल 'साहित्य' की भाषा नहीं है, वह 'सर्वाङ्ग' की भाषा भी है। यदि नीतिगत दृढ़ता, सामाजिक सहयोग, तकनीकी समन्वय और शैक्षिक सुधार के साथ हिंदी को आगे बढ़ाया जाए, तो निश्चय ही हिंदी आने वाले समय में न केवल भारत की, बल्कि विश्व की एक सशक्त, प्रभावशाली और प्रतिष्ठित भाषा के रूप में स्थापित होगी। अगर हम चाहते हैं कि हिंदी सच में फले-फूले तो हमें उसे अपने दैनन्दिन की भाषा बनाना पड़ेगा और यह निर्णय लेना होगा कि हमें विदेशी हसीना का रेशमी दुपट्टा चाहिए या अपनी माँ का सादा आँचल। किसी शायर ने इस सन्दर्भ में क्या खूब लिखा है –

“ अगर धूल है परदेशी, तो मत छूना बेवफा को  
वतन के हैं अगर काँटे, तो सीने से लगा लेना।”



## सोशल नेटवर्किंग के उपयोग का उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों के शैक्षिक निष्पादन पर प्रभाव : समय प्रबंधन और ध्यान एकाग्रता के संदर्भ में अध्ययन

आलोक आनन्द\*  
डॉ. लाल बाबू सिंह\*\*

### सारांश

वर्तमान डिजिटल युग में सोशल नेटवर्किंग प्लेटफॉर्म जैसे फेसबुक, इंस्टाग्राम, व्हाट्सएप, यूट्यूब आदि विद्यार्थियों के जीवन का अभिन्न हिस्सा बन चुके हैं। विशेष रूप से उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी इन प्लेटफॉर्मों का उपयोग मनोरंजन, संचार, जानकारी प्राप्त करने तथा शैक्षिक उद्देश्यों के लिए करते हैं। किंतु इनका अत्यधिक उपयोग विद्यार्थियों के शैक्षिक निष्पादन, समय प्रबंधन और ध्यान एकाग्रता पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव डाल सकता है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि सोशल नेटवर्किंग का उपयोग किस प्रकार विद्यार्थियों के शैक्षिक प्रदर्शन को प्रभावित करता है, विशेषकर समय प्रबंधन और ध्यान एकाग्रता के संदर्भ में।

इस अध्ययन में 200 उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों पर सर्वेक्षण पद्धति के माध्यम से डेटा संकलित किया गया। परिणामों से स्पष्ट हुआ कि सीमित और उद्देश्यपूर्ण उपयोग विद्यार्थियों के शैक्षणिक प्रदर्शन में सहायक हो सकता है, जबकि अत्यधिक एवं अनियंत्रित उपयोग समय प्रबंधन की समस्याएँ तथा ध्यान भंग का कारण बनता है। अध्ययन में यह भी पाया गया कि प्रतिदिन 3 घंटे से अधिक सोशल मीडिया उपयोग करने वाले विद्यार्थियों के अंक औसतन कम थे।

अंततः अध्ययन यह सुझाव देता है कि विद्यार्थियों को डिजिटल साक्षरता, समय प्रबंधन कौशल तथा आत्म-नियंत्रण की शिक्षा दी जानी चाहिए ताकि वे सोशल नेटवर्किंग के सकारात्मक पहलुओं का लाभ उठा सकें और नकारात्मक प्रभावों से बच सकें।

**शब्द कुंजी :** सोशल नेटवर्किंग, शैक्षिक निष्पादन, समय प्रबंधन, ध्यान एकाग्रता, डिजिटल व्यवहार, उच्च माध्यमिक विद्यार्थी

### प्रस्तावना

इक्कीसवीं सदी को यदि "डिजिटल युग" कहा जाए तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास ने मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। विशेष रूप से इंटरनेट और सोशल नेटवर्किंग प्लेटफॉर्म ने सामाजिक संपर्क, सूचना के आदान-प्रदान और ज्ञान अर्जन की प्रक्रियाओं को अत्यंत सरल और तीव्र बना दिया है। आज का विद्यार्थी केवल पाठ्यपुस्तकों तक सीमित नहीं है, बल्कि वह डिजिटल माध्यमों के द्वारा वैश्विक स्तर पर उपलब्ध ज्ञान संसाधनों तक सहज पहुँच रखता है।

सोशल नेटवर्किंग साइटें जैसे फेसबुक, इंस्टाग्राम, व्हाट्सएप, यूट्यूब, टेलीग्राम आदि उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों के दैनिक जीवन का अभिन्न हिस्सा बन चुकी हैं। ये मंच न केवल मनोरंजन और सामाजिक संवाद का साधन हैं, बल्कि अध्ययन सामग्री साझा करने, ऑनलाइन कक्षाओं में भाग लेने, शैक्षिक वीडियो देखने, प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करने तथा समूह चर्चा करने के लिए भी उपयोग किए जाते हैं। कोविड-19 महामारी के बाद डिजिटल शिक्षा के विस्तार ने इन प्लेटफॉर्मों के उपयोग को और अधिक बढ़ा दिया है।

उच्च माध्यमिक स्तर (कक्षा 9 से 12) का चरण विद्यार्थियों के जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। यह वह अवस्था है जब वे किशोरावस्था से युवावस्था की ओर अग्रसर होते हैं। इस समय उनकी बौद्धिक क्षमताओं, व्यक्तित्व, आत्म-अनुशासन तथा अध्ययन की आदतों का निर्माण होता है। इसी स्तर पर उनके भविष्य की शैक्षणिक दिशा निर्धारित होती है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि इस आयु वर्ग के विद्यार्थियों पर सोशल नेटवर्किंग के प्रभाव का गहन अध्ययन किया जाए।

\* शोधार्थी, मनोविज्ञान विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

\*\* एसोसिएट प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

सोशल नेटवर्किंग के सकारात्मक पहलुओं को नकारा नहीं जा सकता। इसके माध्यम से विद्यार्थी नवीनतम शैक्षिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, विशेषज्ञों के व्याख्यान सुन सकते हैं, ई-लर्निंग सामग्री डाउनलोड कर सकते हैं तथा राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। अनेक शिक्षण संस्थान भी आज सोशल मीडिया का उपयोग सूचना प्रसारण, ऑनलाइन असाइनमेंट और चर्चा मंच के रूप में कर रहे हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उचित और संतुलित उपयोग की स्थिति में सोशल नेटवर्किंग विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि को सुदृढ़ कर सकती है।

किन्तु इसके साथ ही इसके नकारात्मक प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। अत्यधिक समय सोशल मीडिया पर व्यतीत करने से विद्यार्थियों के अध्ययन समय में कमी आती है। बार-बार आने वाली सूचनाएँ (नोटिफिकेशन), संदेश, वीडियो और मनोरंजन सामग्री विद्यार्थियों का ध्यान भंग करती हैं। अध्ययन के दौरान बार-बार मोबाइल फोन की जाँच करना एक प्रकार की आदत बन जाती है, जिससे ध्यान की निरंतरता टूटती है। परिणामस्वरूप अध्ययन की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

समय प्रबंधन (Time Management) शैक्षणिक सफलता का एक महत्वपूर्ण घटक है। जो विद्यार्थी अपने समय का उचित नियोजन करते हैं, वे अध्ययन, विश्राम, खेल और अन्य गतिविधियों में संतुलन स्थापित कर पाते हैं। परंतु सोशल नेटवर्किंग का अनियंत्रित उपयोग समय के अपव्यय का कारण बन सकता है। कई बार विद्यार्थी "कुछ मिनटों" के लिए सोशल मीडिया खोलते हैं, परंतु वे घंटों तक उसमें व्यस्त रहते हैं। यह स्थिति परीक्षा की तैयारी, गृहकार्य तथा पुनरावृत्ति के समय को प्रभावित करती है।

इसी प्रकार ध्यान एकाग्रता (Concentration) भी शैक्षणिक निष्पादन का प्रमुख आधार है। अध्ययन के दौरान मानसिक एकाग्रता आवश्यक होती है, जिससे विद्यार्थी विषयवस्तु को गहराई से समझ सकें। डिजिटल माध्यमों की बहु-कार्य (multitasking) प्रवृत्ति विद्यार्थियों को एक साथ कई गतिविधियों में उलझा देती है। उदाहरणस्वरूप, कुछ विद्यार्थी पढ़ाई करते समय भी चैटिंग करते रहते हैं या वीडियो देखते रहते हैं। इससे उनकी स्मरण शक्ति, समझ और विश्लेषण क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

आज के समय में यह प्रश्न अत्यंत प्रासंगिक हो गया है कि क्या सोशल नेटवर्किंग विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि को बढ़ा रही है या घटा रही है? क्या यह केवल एक मनोरंजन साधन है या एक शैक्षिक उपकरण भी है? क्या इसका प्रभाव सभी विद्यार्थियों पर समान रूप से पड़ता है, या उपयोग की मात्रा और उद्देश्य के अनुसार भिन्न होता है?

कुछ शोधों में यह पाया गया है कि सीमित और शैक्षिक उद्देश्य से किया गया उपयोग लाभकारी हो सकता है, जबकि अत्यधिक और मनोरंजनप्रधान उपयोग शैक्षणिक प्रदर्शन में गिरावट ला सकता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि समस्या स्वयं सोशल मीडिया नहीं है, बल्कि उसका अनियंत्रित और असंतुलित उपयोग है।

उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी भावनात्मक रूप से भी संवेदनशील होते हैं। सोशल मीडिया पर तुलना, प्रतिस्पर्धा और सामाजिक मान्यता की चाह उन्हें मानसिक तनाव की ओर भी ले जा सकती है। मानसिक तनाव और चिंता की स्थिति में अध्ययन पर ध्यान केंद्रित करना और भी कठिन हो जाता है। अतः सोशल नेटवर्किंग का प्रभाव केवल समय प्रबंधन और ध्यान एकाग्रता तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह व्यापक मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी उत्पन्न कर सकता है।

वर्तमान अध्ययन इसी संदर्भ में महत्वपूर्ण है। यह शोध यह समझने का प्रयास करता है कि सोशल नेटवर्किंग का उपयोग उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों के शैक्षिक निष्पादन को किस प्रकार प्रभावित करता है, विशेषकर समय प्रबंधन और ध्यान एकाग्रता के संदर्भ में। इस अध्ययन का उद्देश्य केवल नकारात्मक पहलुओं को उजागर करना नहीं है, बल्कि संतुलित उपयोग की आवश्यकता और उसके संभावित लाभों को भी रेखांकित करना है।

डिजिटल युग में सोशल नेटवर्किंग से पूर्णतः दूरी बनाना संभव नहीं है, न ही यह व्यावहारिक समाधान है। आवश्यकता इस बात की है कि विद्यार्थियों में डिजिटल अनुशासन, आत्म-नियंत्रण और समय नियोजन की क्षमता विकसित की जाए। यदि विद्यार्थी सोशल मीडिया का उपयोग उद्देश्यपूर्ण, सीमित और शैक्षिक दृष्टिकोण से करें, तो यह उनके लिए एक सशक्त साधन सिद्ध हो सकता है।

अतः प्रस्तुत शोध का आधार यही है कि सोशल नेटवर्किंग का प्रभाव द्वैध (दोहरा) है यह अवसर भी है और चुनौती भी। यह इस बात पर निर्भर करता है कि विद्यार्थी इसका उपयोग किस प्रकार करते हैं। समय

प्रबंधन और ध्यान एकाग्रता जैसे कारकों के माध्यम से शैक्षिक निष्पादन पर इसके प्रभाव का अध्ययन करना वर्तमान शैक्षिक परिप्रेक्ष्य में अत्यंत आवश्यक और प्रासंगिक है।

#### समस्या का कथन

क्या सोशल नेटवर्किंग का उपयोग उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों के शैक्षिक निष्पादन को प्रभावित करता है? यदि हाँ, तो किस प्रकार –

1. समय प्रबंधन की क्षमता पर
2. ध्यान एकाग्रता पर

क्या अत्यधिक उपयोग शैक्षिक उपलब्धि को कम करता है?

#### अध्ययन का महत्व

1. यह अध्ययन डिजिटल युग में विद्यार्थियों की शैक्षणिक स्थिति को समझने में सहायक है।
2. यह शिक्षकों एवं अभिभावकों को विद्यार्थियों के सोशल मीडिया उपयोग को संतुलित करने में मार्गदर्शन प्रदान करेगा।
3. नीति निर्माताओं के लिए डिजिटल शिक्षा संबंधी नीतियाँ बनाने में सहायक होगा।
4. विद्यार्थियों में समय प्रबंधन एवं ध्यान एकाग्रता के महत्व को रेखांकित करेगा।

#### अध्ययन की सीमाएँ और चुनौतियाँ

1. अध्ययन केवल एक सीमित भौगोलिक क्षेत्र तक सीमित था।
2. विद्यार्थियों द्वारा दी गई जानकारी स्व-रिपोर्ट (self & report) पर आधारित थी।
3. सोशल मीडिया उपयोग का सटीक समय मापना कठिन था।
4. अन्य कारकों (जैसे पारिवारिक वातावरण, आर्थिक स्थिति) को पूर्णतः नियंत्रित नहीं किया जा सका।

#### अध्ययन की रूपरेखा

यह अध्ययन सर्वेक्षण आधारित मात्रात्मक शोध है। डेटा का विश्लेषण प्रतिशत, औसत तथा सहसंबंध विधि से किया गया।

#### अध्ययन के उद्देश्य

1. विद्यार्थियों के सोशल नेटवर्किंग उपयोग की आवृत्ति ज्ञात करना।
2. सोशल मीडिया उपयोग और शैक्षिक निष्पादन के बीच संबंध का अध्ययन करना।
3. समय प्रबंधन पर सोशल मीडिया के प्रभाव का विश्लेषण करना।
4. ध्यान एकाग्रता पर इसके प्रभाव का अध्ययन करना।

#### साहित्य समीक्षा

डिजिटल युग में सोशल नेटवर्किंग का प्रभाव शिक्षा जगत में एक महत्वपूर्ण शोध-विषय के रूप में उभरा है। पिछले एक दशक में अनेक शोधकर्ताओं ने विद्यार्थियों के शैक्षणिक जीवन पर सोशल मीडिया के प्रभावों का विश्लेषण किया है। इस संदर्भ में श्रनदबव (2012) का अध्ययन उल्लेखनीय है, जिसमें यह पाया गया कि सोशल मीडिया के अत्यधिक उपयोग और शैक्षणिक उपलब्धि के मध्य नकारात्मक सहसंबंध पाया गया। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि जो विद्यार्थी प्रतिदिन अधिक समय फेसबुक जैसे प्लेटफॉर्म पर व्यतीत करते हैं, उनका ळच अपेक्षाकृत कम होता है। इस शोध से यह संकेत मिलता है कि समय का अनियंत्रित उपयोग विद्यार्थियों के अध्ययन समय को प्रभावित करता है, जिससे शैक्षिक निष्पादन में गिरावट आती है।

इसी प्रकार ज़पतेबीदमत और ज़ंतचपदोप (2010) ने अपने अध्ययन में पाया कि सोशल नेटवर्किंग का अत्यधिक उपयोग करने वाले छात्रों के अंक और अध्ययन समय, कम उपयोग करने वाले छात्रों की तुलना में कम थे। उनका मत था कि सोशल मीडिया विद्यार्थियों को एक प्रकार के डिजिटल विचलन (distraction) की ओर ले जाता है, जहाँ वे एक साथ कई गतिविधियों में संलग्न रहते हैं, जिससे उनकी एकाग्रता प्रभावित होती है। यह अध्ययन विशेष रूप से ध्यान एकाग्रता के संदर्भ में महत्वपूर्ण है, क्योंकि उच्च माध्यमिक स्तर पर विषयों की जटिलता बढ़ जाती है और निरंतर मानसिक एकाग्रता आवश्यक होती है।

Rosen, Lim, Carrier और Cheever (2013) ने डिजिटल व्यवधानों (digital interruptions) के प्रभाव पर अध्ययन करते हुए पाया कि मोबाइल फोन नोटिफिकेशन और टेक्स्ट संदेशों के कारण विद्यार्थी अध्ययन के दौरान बार-बार अपना ध्यान बदलते हैं। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि निरंतर कार्य परिवर्तन (task switching) स्मरण शक्ति और गहन अधिगम (deep learning) की प्रक्रिया को बाधित करता है। इस अध्ययन

से स्पष्ट होता है कि ध्यान की निरंतरता शैक्षिक सफलता के लिए अनिवार्य है, और सोशल नेटवर्किंग प्लेटफॉर्म इस निरंतरता को बाधित कर सकते हैं।

हालाँकि, सभी शोध सोशल मीडिया के प्रभाव को केवल नकारात्मक दृष्टि से नहीं देखते। Tess (2013) ने उच्च शिक्षा के संदर्भ में किए गए अपने अध्ययन में पाया कि यदि सोशल मीडिया का उपयोग शैक्षिक उद्देश्यों से किया जाए, जैसे कि ऑनलाइन चर्चा, शैक्षिक संसाधनों का आदान-प्रदान और सहयोगात्मक अधिगम, तो यह विद्यार्थियों की भागीदारी और समझ को बढ़ा सकता है। इसी प्रकार Greenhow और Robelia (2009) ने पाया कि सोशल नेटवर्किंग साइटें विद्यार्थियों को अनौपचारिक अधिगम (informal learning) के अवसर प्रदान करती हैं, जहाँ वे सहपाठियों के साथ ज्ञान साझा कर सकते हैं और नई सूचनाएँ प्राप्त कर सकते हैं।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में भी इस विषय पर अनेक शोध किए गए हैं। Sharma और Sharma (2018) के अध्ययन में यह पाया गया कि शहरी विद्यालयों के उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों में सोशल मीडिया उपयोग की मात्रा और परीक्षा परिणामों के बीच स्पष्ट संबंध है। उनके अनुसार, प्रतिदिन तीन घंटे से अधिक सोशल मीडिया उपयोग करने वाले विद्यार्थियों के अंक अपेक्षाकृत कम पाए गए। अध्ययन में यह भी उल्लेख किया गया कि अत्यधिक उपयोग करने वाले विद्यार्थियों में समय प्रबंधन की समस्या अधिक देखी गई। वे अध्ययन समय को टालने की प्रवृत्ति रखते थे, जिससे परीक्षा के समय तनाव की स्थिति उत्पन्न होती थी।

Khurana (2015) ने किशोरों के व्यवहारिक पैटर्न पर सोशल मीडिया के प्रभाव का अध्ययन करते हुए यह पाया कि निरंतर डिजिटल संलग्नता से आत्म-नियंत्रण की क्षमता प्रभावित होती है। विद्यार्थियों में त्वरित संतुष्टि (instant gratification) की प्रवृत्ति विकसित होती है, जिससे वे दीर्घकालिक लक्ष्यों, जैसे परीक्षा की तैयारी, पर पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाते। यह निष्कर्ष समय प्रबंधन के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि आत्म-अनुशासन और लक्ष्य निर्धारण शैक्षणिक सफलता के प्रमुख घटक हैं।

इसके अतिरिक्त, Przybylski और Weinstein (2017) ने यह सुझाव दिया कि डिजिटल तकनीक का मध्यम स्तर तक उपयोग विद्यार्थियों के लिए हानिकारक नहीं है, बल्कि अत्यधिक उपयोग ही समस्या का कारण बनता है। उन्होंने "Goldilocks Hypothesis" प्रस्तुत करते हुए कहा कि संतुलित उपयोग लाभकारी हो सकता है, जबकि बहुत कम या बहुत अधिक उपयोग दोनों ही स्थितियाँ समस्यात्मक हो सकती हैं। यह दृष्टिकोण इस शोध के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह स्पष्ट करता है कि सोशल नेटवर्किंग का प्रभाव उपयोग की मात्रा और उद्देश्य पर निर्भर करता है।

ध्यान एकाग्रता के संदर्भ में Ophir, Nass और Wagner (2009) का अध्ययन उल्लेखनीय है, जिसमें पाया गया कि जो व्यक्ति नियमित रूप से मल्टीटास्किंग करते हैं, उनकी ध्यान नियंत्रण क्षमता कम हो जाती है। सोशल मीडिया के वातावरण में निरंतर मल्टीटास्किंग सामान्य हो गई है, जहाँ विद्यार्थी एक ही समय में चैटिंग, वीडियो देखना और अध्ययन करने का प्रयास करते हैं। इससे गहन अधिगम की प्रक्रिया बाधित होती है और दीर्घकालिक स्मृति निर्माण प्रभावित होता है।

समग्र रूप से साहित्य से यह स्पष्ट होता है कि सोशल नेटवर्किंग का प्रभाव बहुआयामी है। एक ओर यह विद्यार्थियों को शैक्षिक संसाधनों तक त्वरित पहुँच प्रदान करता है और सहयोगात्मक अधिगम को बढ़ावा देता है, वहीं दूसरी ओर इसका अत्यधिक और अनियंत्रित उपयोग समय प्रबंधन, ध्यान एकाग्रता और शैक्षणिक निष्पादन को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है। अधिकांश शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि समस्या सोशल मीडिया की उपस्थिति नहीं, बल्कि उसका असंतुलित उपयोग है।

इस प्रकार उपलब्ध साहित्य यह संकेत देता है कि उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों के शैक्षणिक निष्पादन पर सोशल नेटवर्किंग का प्रभाव प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में पड़ता है। समय प्रबंधन और ध्यान एकाग्रता ऐसे मध्यस्थ (mediating) कारक हैं, जिनके माध्यम से सोशल मीडिया उपयोग शैक्षणिक उपलब्धि को प्रभावित करता है। प्रस्तुत अध्ययन इसी शोध अंतराल को भरने का प्रयास करता है, विशेष रूप से उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों के संदर्भ में, जहाँ यह विषय अत्यंत प्रासंगिक और संवेदनशील है।

#### कार्यप्रणाली

शोध प्रकार:

- वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि

नमूना:

- 200 उच्च माध्यमिक विद्यार्थी

उपकरण:

- प्रश्नावली
- शैक्षिक अंक (पिछली परीक्षा)

विश्लेषण विधि:

- प्रतिशत
- औसत
- सहसंबंध विश्लेषण

आंकड़ों का विश्लेषण

सारणी 1: सोशल मीडिया उपयोग का दैनिक समय

उपयोग समय (प्रतिदिन)	विद्यार्थियों की संख्या	प्रतिशत
1 घंटे से कम	30	15%
1-2 घंटे	70	35%
2-3 घंटे	60	30%
3 घंटे से अधिक	40	20%

सारणी 2: औसत अंक (उपयोग के आधार पर)

उपयोग समय	औसत अंक (%)
1 घंटे से कम	78%
1-2 घंटे	74%
2-3 घंटे	68%
3 घंटे से अधिक	61%

परिणाम

1. 3 घंटे से अधिक सोशल मीडिया उपयोग करने वाले विद्यार्थियों के अंक कम पाए गए।
2. अधिक उपयोग करने वाले विद्यार्थियों में समय प्रबंधन की समस्या अधिक देखी गई।
3. नोटिफिकेशन एवं चॉटिंग के कारण ध्यान एकाग्रता में कमी देखी गई।
4. सीमित एवं शैक्षिक उपयोग करने वाले विद्यार्थियों का प्रदर्शन बेहतर था।

चर्चा

- अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सोशल नेटवर्किंग का प्रभाव उपयोग की प्रकृति और समय पर निर्भर करता है।
- अत्यधिक उपयोग समय प्रबंधन को बाधित करता है, जिससे पढ़ाई के लिए उपलब्ध समय कम हो जाता है।
- लगातार डिजिटल व्यवधान ध्यान की निरंतरता को तोड़ते हैं।
- हालाँकि, उचित मार्गदर्शन के साथ सोशल मीडिया शिक्षण में सहायक उपकरण बन सकता है।

निष्कर्ष

यह अध्ययन दर्शाता है कि सोशल नेटवर्किंग का अनियंत्रित उपयोग उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों के शैक्षिक निष्पादन पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकता है।

समय प्रबंधन और ध्यान एकाग्रता, दोनों ही शैक्षणिक सफलता के प्रमुख घटक हैं, जो अत्यधिक डिजिटल संलग्नता से प्रभावित होते हैं।

अतः आवश्यक है कि:

- विद्यार्थियों को डिजिटल अनुशासन सिखाया जाए।
- अध्ययन के समय सोशल मीडिया से दूरी रखी जाए।
- अभिभावक और शिक्षक संतुलित उपयोग के लिए मार्गदर्शन दें।

## संदर्भ सूची :-

- Greenhow, C., & Robelia, B. (2009). Informal learning and identity formation in online social networks. *Learning, Media and Technology, 34*(2), 119–140.
- Junco, R. (2012). The relationship between frequency of Facebook use, participation in Facebook activities, and student engagement. *Computers & Education, 58*(1), 162–171.
- Kirschner, P. A., & Karpinski, A. C. (2010). Facebook® and academic performance. *Computers in Human Behavior, 26*(6), 1237–1245.
- Khurana, N. (2015). The impact of social networking sites on the academic performance of students in India. *Journal of Education and Practice, 6*(21), 1–6.
- Ophir, E., Nass, C., & Wagner, A. D. (2009). Cognitive control in media multitaskers. *Proceedings of the National Academy of Sciences, 106*(37), 15583–15587.
- Przybylski, A. K., & Weinstein, N. (2017). A large-scale test of the Goldilocks hypothesis: Quantifying the relations between digital-screen use and the mental well-being of adolescents. *Psychological Science, 28*(2), 204–215.
- Rosen, L. D., Lim, A. F., Carrier, L. M., & Cheever, N. A. (2013). An empirical examination of the educational impact of text message–induced task switching in the classroom. *Computers in Human Behavior, 29*(3), 948–958.
- Sharma, R., & Sharma, S. (2018). Social media usage and academic performance among senior secondary school students. *International Journal of Research in Social Sciences, 8*(4), 45–52.
- Tess, P. A. (2013). The role of social media in higher education classes (real and virtual): A literature review. *Computers in Human Behavior, 29*(5), A60–A68.



## कविभुवनेश्वरकरविरचिते दोषशतके सामाजिकस्थितेः अवलोकनम्

प्रतिश्रुतिपरिरायः\*

### कविपरिचयः

कविवरः भुवनेश्वरकरः नयागडमण्डलस्य वाउँशगाडिआग्रामे जन्म लब्धवान् । तिरुपतिविश्वविद्यालयतः वाचस्पतिः इति उपाधिः अनेन प्राप्तः । तस्य पिता फकीरकरः माता च रेवतीदेवी । कविः भूवनेश्वरकरः संकृतभाषया कानिचित् पुस्तकानि रचितानि । तथैव समाजस्य अधोगतिं दृष्ट्वा कविः चिन्तितः सन् जनकल्याणाय समाजं परिमार्जयितुं सदुपदेशान् प्रददाति, यतः कविः न केवलं काव्येषु प्रकृतेः सौन्दर्यं वर्णयति अपि तु मानवहिताय सद्व्यवहारं सदुपदेशं च स्वलेखन्या उपस्थापयति ।

अयं कविवरः वृत्तिषु एकः अध्यापकः आसीत् । सः सामजसुधारकः । अतः तस्य प्रथमकर्तव्यमस्ति दुर्नीतेः परिक्षणाय सन्मार्गप्रदर्शनम् । अतः मनुष्यान् प्रति दोषान् दुरीकर्तुं प्रेरयति काव्यमेकं अपि च दोषशतकनामकम् युवकानां कृते औचित्यानौचित्यकार्येषु कर्तव्यज्ञानप्रदानमपि काव्यमेतत् शिक्षयति ।

साम्प्रतिकसमाजस्य स्पष्टं चित्रम् अत्र कविना लिख्यते । दोषशतकम् एकं लघुकाव्यम् । अत्र शतं श्लोकाः सन्ति । मानवेषु किंप्रकारकाः दोषाः परिलक्ष्यन्ते, तेषां दोषाणाम् अत्र आलोचना विद्यते । अतः काव्यस्य नाम दोषशतकम् इति ।

करमहोदयस्य समाजप्रीतिः अस्मिन् काव्ये द्रष्टुं शक्यते । जनेषु उत्तममनोभावः दिनात् दिनं क्षीयते । मानवस्य अधोगतिः स्पष्टं प्रतीयते । अन्तः निर्मलं कर्तुं ते न इच्छन्ति । अपि तु परोपकारः अस्माकं प्रथमं कर्तव्यम् इति वचनं मनुष्यः विस्मरति । अनुदिनं क्षीयन्ते मानविकगुणाः । समाजस्य अधोगतिं दृष्ट्वा कवेः मनसि खेदः जायते । परिवारेषु ऐक्यमनोभावः दूरीभवति । गुरुजनेभ्यः कनिष्ठाः दुर्व्यवहारं प्रदर्शयन्ति। तेषाम् उपदेशम् उपहसन्ति पित्रोः सेवां कर्तुं न इच्छन्ति ।

भारतवर्षस्य संस्कृतिः शनैः शनैः अपसरति । सदाचार-अहिंसा - नैतिकगुणाः प्रतिदिनं क्षीयन्ते । कविः भुवनेश्वरकरः एतानि धर्मरहितकार्याणि दृष्ट्वा चिन्तितः । बालाः गुणग्रहणं कर्तुं न समर्थाः । स्वकर्तव्यात् सुनीतेः धार्मिकविश्वासादेः सुचिन्तनाच्च दूरं गच्छन्ति युवानः इति कविना दुःखमनसा कथ्यते ।

केचन साधुजनाः सर्वं दृष्ट्वाऽपि तुष्णीं तिष्ठन्ति । तथापि कवेर्मनसि पुनः आशा सञ्चरिता भवति । कालक्रमेण सर्वे सन्मार्गम् अनुसरन्ति । धर्मस्य पन्थानं दर्शयन्ति । अन्धकारात् परं पुनः आलोकः आयाति इति वदन्ति। तेन दोषाणां दूरीकरणं भवति ।

अस्मिन् दोषशतककाव्ये समाजकल्याणाय अप्रियं सत्यं वचनं वर्णितमस्ति । अत्र पद्यानि शतं रचितानि । एतस्य लघुकाव्यस्य निर्विघ्नपरिसमाप्तिहेतुः पवित्रं श्रीक्षेत्रधाम नमस्करोति । अत्र मङ्गलाचरणे सप्त श्लोकाः रचिताः सन्ति ।

एषः करमहोदयः काव्यारम्भे परंब्रह्मणः प्रभोः जगन्नाथस्य प्रशंसां करोति । अपि च सः उत्कलीयः । उत्कलस्य गौरवं जगन्नाथसंस्कृतेः महत्त्वं श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्रे श्रीमन्दिरस्य गुरुत्वं च ज्ञापयति । धर्मसुरक्षार्थं पुरुषोत्तमं प्रार्थयते मनुष्यः । महत्समाजगठनार्थं पुरातनी जगन्नाथसंस्कृतिः अतीव महनीया इति वदति अयं कविप्रवरः ।

अत्र ग्रन्थे प्रतिपादिताः विषया अधुना दिङ्मात्रम् ओलोच्यते ।

### दोषाः

दोषशतके आदौ श्रीमन्दिरस्य जयगानं विधाय कविः दोषशतकारम्भे लिखति -

दुर्नीतिरुन्नतिपदं परितः प्रयाति  
साधुः समुन्नतगुणो नतिमैति नित्यम् ।  
मूक्यायते गुणिगणः खलराजनीतौ  
हे काल पश्य तव चित्रगतेः प्रभावम् ॥<sup>1</sup>

अद्यतने समाजे येषां घटनानां प्रसारणं भवति तदेव कविना दृष्टम् । अतः तस्य हृदि क्लेशः जायते । प्रतिदिनं दुर्नीतेः कुटनीतेः च प्रभावः अधिकः परिदृश्यते । मूढाः विवेकशून्याः भवन्ति। साधुजनाः अनीतिं दृष्ट्वा स्थाणुतां प्रयान्ति । एवमेव सामाजिकचित्रं दृष्ट्वा कविः अनुशोचति । कालस्य प्रभावेण इदं घटते इति चिन्तयति ।

\* शोधच्छात्रा, श्रीजगन्नाथसंस्कृतविश्वविद्यालयः, पुरी ।

<sup>1</sup> दोषशतकम्, श्लो. १

मिथ्या शठता चौरभयं राजभयं वित्तहरणं चेत्यदिकं नदीजलवत् वर्धते । मोहग्रस्तः मानवः लोभात् कुकर्मकरणसमये किमपि न चिन्तयति ।

अत्यन्तं लोभासक्ताः नराः अर्थोपार्जनार्थं कुमार्गं चिन्वते इति कविना उक्तम् । तद्यथा-

चौर्येण वा प्रहरणेन बलाद्रजन्या  
मल्पैर्दिनैः कथमहं धनिको भवेयम् ।  
ईदुकप्रवृत्तिरिह वृत्तिविधौ विवृद्धा  
लोभोऽधिको हि बहुकुत्सितकर्ममूलम् ॥<sup>2</sup>

अस्मिन् श्लोके कविः श्लोकमाध्यमेन मनुष्यं सन्मार्गं गन्तुं प्रेरयति । यदि कविः अत्र दोषान् न पश्यति तर्हि मानवसमाजस्य उत्तमगुणानां व्यवहाराणां सदाचाराणां विकासः न भवति । सम्प्रति कुकर्म दिनात् दिनं वर्धते, अतः अत्र कथं नैतिकविकाशः भवेत् इति कविवरः पृच्छति ।

विद्या ददात्यविनयं बहुषु स्थलेषु  
छात्रेषु केचिदपि मादकवस्तुरक्ताः ।  
अत्युद्धता युवसु केऽपि कुकर्मलिप्ताः  
प्रायोऽधुना युवमतिर्गलिता सुनीतेः ॥<sup>3</sup>

विद्या एव एकमात्रं साधनं सदाचारनिमित्तम्, परन्तु तद्विना सम्प्रतिकपरिस्थितौ छात्राः अधोगतिं गच्छन्ति । शिक्षया युवसमाजः परिमार्जितो भवेत् । परन्तु अद्यतनायां शिक्षाव्यवस्थायां काचित् त्रुटिरस्ति । अतः छात्रेषु केचन निशासक्ताः, कुकर्मप्रवृत्ताः उग्रस्वभावाः निम्नगामिनः च भवन्ति ।

यत्साधुकर्मं भवतीह च राजकीयं  
तत्कर्मसाधनधनात्कव कियन्ति यान्ति ।  
को वा वदेत् किमपि वा शृणुयाच्च को वा  
गृह्णात्यपो हि विटपी चरणैरदृश्यैः ॥<sup>4</sup>

अधुना साधुकर्म न दृश्यते । परस्परं विश्वासः नैवास्ति । विद्यालये गुरुशिष्यसम्पर्कः न विद्यते । तद्विषये कवेरुक्तिः यथा -

विद्यालयेषु गुरुशिष्यविधिर्बिपिन  
शछात्रो गुरुं प्रतिदिनं न नमस्करोति ।  
आज्ञां गुरोरपि च लंघयतीह धार्ष्ट्यात्  
पश्चाद् गुरोरनुकरोति तदीयचेष्टाम् ॥<sup>5</sup>

प्राचीनकाले गुरुशिष्यसम्पर्कः अत्यन्तं सुदृढ आसीत् । गुरोः आदेशं विना शिष्यः स्वेच्छया न किमपि कर्तुं समर्थः । तदा विनयशीलं शिष्यस्य अलङ्कार आसीत् । शिष्याः ब्रह्मचर्यं व्रतपालने रताः आसन् । परन्तु कवेः कथनं यत्, अधुना आधुनिकसमाजे एतद् सर्वं द्रष्टुं न शक्यते । विद्यालये छात्रः शिक्षकं प्रतिदिनं न नमस्करोति ।

पुनः कविः साम्प्रतिकगुरुशिष्यपरम्परां आधुनिकशिक्षाव्यवस्थां गुरुशिष्ययोर्मध्ये शैक्षिकमनोभावं, गुरुजनान् प्रति उत्तमव्यवहारं च यथायथं वर्णयति । व्यवहारः आदरपूर्णो नास्ति इति कविकथनम् ।

शिक्षाव्यवस्थां शैक्षिकप्रणालीं च दृष्ट्वा करमहोदयः चिन्तितः । श्रेणीकक्षायां छात्राः पाठं न शृण्वन्ति । अधुना अन्यकार्येषु प्रवृत्ताः शिक्षका अपि । एवमेव शिक्षकछात्रयोर्मध्ये पवित्रसम्बन्धः द्रष्टुं न शक्यते । कविरपि पञ्चदशश्लोकैः शिक्षकस्य अवहेलां वर्णयति । शिक्षकः यदि अध्यापने न सफलः तर्हि छात्रैः उपहसितः भविष्यति । अतः ज्ञायते न केवलं छात्रेषु दोषः अपि तु शिक्षके अपि । अतः सर्वे मिथः उत्तमगुणधारिणः भवेयुः ।

कविवरः शिक्षाव्यवस्थायाः दोषान् स्पष्टरूपेण उक्तवान् । अपि च युवसमाजस्य स्वखलनं शनैः शनैः भवति इति तेषां विषये आलोचयति ।

<sup>2</sup> दोषशतकम्, श्लो. ३

<sup>3</sup> दोषशतकम्, श्लो. ४

<sup>4</sup> दोषशतकम्, श्लो. ५

<sup>5</sup> दोषशतकम्, श्लो. ८

काव्येऽस्मिन् कविः प्रत्येकस्य मानवस्य कर्तव्यं किम् ? अत्र के दोषाः दृश्यन्ते ? तत्सर्वं स्मरति । अस्माकं समाजे प्रत्येकेषु कार्येषु विघ्नमाचरति दुर्जनः। दुर्जनः स्वभावात् यदि कुकर्म आचरति तर्हि प्रत्येकेषु क्षेत्रेषु राष्ट्रस्य दुर्गतिः भवति । एतेन कविः देशस्य अग्रगतिः क्षीयते इति ज्ञात्वा मनसि खेदम् अनुभवति ।

अतः राष्ट्रस्य हिताय सुकार्यं करणीयं न कुकार्यमिति कवेर्वचनम् । अत्रादौ शिक्षाव्यवस्थायां ये दोषाः सन्ति तद्विषये वर्णयति । प्रथमश्लोके दुर्नीतिः कारणम्, दुर्जनस्य स्वभावः, खलराजनीतिः च कथं जायते, बलपूर्वकं परधनहरणम्, भयात् गुणिजनानां मौनता इत्यादयः विषयाः आलोच्यन्ते । साधुजनः समाजे मौनं स्थित्वा सर्वं प्रदर्शयति, यथा - अदृश्यैः चरणैः वृक्षः जलं नीत्वा जीवति अन्यान् जीवयति च, तथा गुरुः सर्वदा चरित्रवान्, उत्तमगुणसम्पन्नः, छात्रानुरागी अध्यापने सोत्साही, त्यागी समयानुवर्ती, नीतिवान् च भवेत् इति ।

गुरोः न कदापि मद्यादिकं पिबेत् । कार्येषु अवहेलानं न दर्शयेत् । अर्थोपाजने आकर्षितः न भवेत् । परन्तु अधुना एतद् विकलचित्रं दृष्ट्वा कविः चिन्तितो दृश्यते ।

शिष्यः सर्वदा विनयशीलः सदाचारी गुरुमार्गानुगामी समयानुवर्ती नीतिवान् सत्यनिष्ठः गुणसम्पन्नः च भवेत् । कविः साम्प्रतिकसमाजे छात्रेषु सुगुणं न दृष्ट्वा व्यथितः । तन्मतेन छात्राणां शुद्धं हृदयं न दृश्यते । इदानीं सः गुरुजनं प्रति उत्तमं व्यवहारं न प्रदर्शयति । मादकद्रव्यस्य सेवनं विना अध्ययनं कर्तुं न इच्छति ।

अनन्तरं पथभ्रष्टयुवसमाजं प्रति चिन्तितः कविः कथयति कुकर्मणि लिप्ताः मद्यादिपानरताः दयाक्षमागुणेषु निवृत्ताः युवानः देशस्य प्रगतये हेतवः कथं भवेयुः ? एतस्मात् अस्माकं राष्ट्रम् इदानीं संडकटे अस्ति ।

किञ्च साम्प्रतं ग्रामेषु नगरेषु च सर्वेषु स्थानेषु जनाः भयेन सञ्चरन्ति दुःखबाहुल्यात् । दुर्जनाः आतङ्कवादिनः संत्रासवादिनः च प्रतिदिनं हिंसां द्वेषम् आचरन्ति, धनजीवनं नयन्ति, बलपूर्वकं वित्तहरणं हननं च कुर्वन्ति । एतदसर्वं कुत्सितं कार्यम् । एतेन साधारणजनाः नित्यम् आतङ्किताः दृश्यन्ते ।

युवानः द्युत्क्रीडा-सुरापान-कलह-व्यसनैः च कालं यापयन्ति । अनन्तरं कविः वधूः यौतुकहेतोः यां पीडां प्राप्नोति, दुःखेन तं दोषं श्लोकेषु उपस्थापयति । धनलोभात् तां कन्यां स्वगृहात् वहिष्कुर्वन्ति नववधुं निर्यातयन्ति च । एषः समाजस्य अन्यः एकः प्रमुखदोषः इति । कविना उक्तम् -

आसंध्यमत्र घटिकां नव यावदेव  
द्विर्वाधिकं प्रतिदिनं प्रतियाति विद्युत् ।  
शुद्धं जलं न सुलभं सुगामो न पंथाः  
पल्लीजनः खलु चिरादवहेलितोऽलम् ॥<sup>6</sup>

अपि च साम्प्रतिकसमाजे पूर्ववत् परिवारेषु ग्रामेषु च सत्यनिष्ठ-परोपकार-स्नेह-सहानुभूतिप्रभृतयः भावनाः न दृश्यन्ते । अत्र लोकेषु ऐक्यमनोभावः दिनात् दीनं क्षीयते । ग्राम्यजीवनं नष्टम् । सांयकालीनम् आध्यात्मिकवातावरणम् अधुना द्रष्टुं न शक्यते । भगवत्पारायणं भगवच्चिन्तनं च दूरं गतम् । सर्वेऽपि लुब्धकाः भवन्ति इदानीम् ।

गणतन्त्रराष्ट्रे जनानां सुरक्षार्थम् आरक्षिजनाः सर्वकारैः नियुक्ताः । अत्रापि कविना प्रदर्शयते दोषः । सः आरक्षी मिथ्या प्रवञ्चनं विधाय निर्दोषजनं दण्डयति । दुर्जनः सः अर्थं प्रदाय स्वच्छन्दं विचरति ।

ऋणी ऋणं कृत्वा ऋणधनस्य परिशोधं न करोति । अत्र जनानां मध्ये विश्वासः क्षीयते । केचन जनाः ऋणधनं न दत्त्वा पलायनपथिकाः भवन्ति ।

ग्राम्यजीवनम् अतीव सुन्दरं मधुमयञ्च । परन्तु खलराजनीतौ ग्रामस्य ऐक्यं दूरीभवति । परस्परयोर्मध्ये विवादः जायते । पल्लीजीवनं क्षीयते । अतः अधुना नगरं प्रति आगच्छन्ति गुणिजनाः । कविः ग्राम्यनगरयोः मध्ये तुलनां कृतवान् । उभयत्र गुणदोषाः कथिताः-

कुर्वन्ति कर्म खलु ये श्रमिकाः प्रभूणां  
कर्मण्यतीव शिथिला बहवश्च तेषु ।  
आवश्यकः संकलकर्मणि पूर्णनिष्ठा  
कर्तव्यसाधनमिहोन्नतिमातनोति ॥<sup>7</sup>

<sup>6</sup> दोषशतकम्, श्लो. ५४

<sup>7</sup> दोषशतकम्, श्लो. ६७

इदानीं श्रमिकाः स्वकर्मणि साधनरताः भवेयुः इति कविः भुवनेश्वरकरमहोदयः आलोचयति । समाजे सकलं कर्म श्रमिकैः भवति प्रायः । परन्तु बहवः तेषु अतीव शिथिलाः सन्ति । विशेषतया कृषिकार्याणि गृहनिर्माणानि च एवमेव अनेकानि कार्याणि श्रमिकाणां सहायतां विना न भवन्ति । कृषिप्रभृतिषु कार्येषु महान् अर्थव्ययः भवति । अतः स्वयमेव स्वकर्म करणीयम् ।

सर्वकारेण पञ्चायतस्तरं प्रति अनेकाः योजनाः प्रदीयन्ते । परं तेषां सदुपयोगः जनानां कृते न भवति । यानि रूप्यकाणि दानार्थम् आयान्ति तत् धनं जनहिताय न दीयते । स्वल्पं दत्त्वा अवशिष्टं धनं स्वयं नयति दुर्जनः । सः अत्र साधुजनः इव आचरणं कृत्वा जनहिताय धनं हरति । कविना इदं तु अत्यन्तं निन्दनीयम् इति उच्यते ।

अपि च युनां नियुक्तिसमये योग्यप्रार्थी न दृश्यते । योऽपि धनं दातुं समर्थः सः अयोग्योऽपि नियुक्तिं प्राप्नोति । अतः ज्ञायते योग्यतायाः अधुना न सम्मानम् । विद्यादक्षतायाः बलात् धनवलम् अधिकं श्रेष्ठम् इति प्रमाणितं भवति ।

सर्वकारात् शस्य-तैल-शर्करादीनां सामग्रीणां दीनेषु वण्टनार्थं आगच्छति, परन्तु दुर्नीतिहेतोः एतत् सर्वं जनान् निकषा न गच्छति।

**पञ्जीक्रियादिविधिरस्ति च योऽत्र भूमे-  
र्यानादिकस्य खलु सोऽर्थमपेक्षतेऽलम् ।  
अर्थग्रहश्चलति यादृशाएव तत्र  
क्रेता च वेति सकलं व्यवसायियानो ॥<sup>8</sup>**

भूमियानादिक्रयेषु पञ्जीकरणव्यवस्था अस्माकं देशे प्रचलति । कविना कथ्यते अस्माद् कारणात् अर्थव्ययः भवति । तद्वारा जातीयराजपथसेतुनिर्माणा-दिसमये सर्वकारात् यावत्परिमाणेन अर्थराशिः आयाति तत्र कार्यकर्तारः कति प्रतिशतं अर्थं प्राप्स्यन्ति इति चिन्तयति सर्वकारः, न तु कार्यसम्पादनाय सम्यक् चिन्तयति ।

कविः करमहोदयः प्रत्येकेषु कार्येषु दुर्नीतिः विकासपदं दृष्ट्वा दुःखं प्रकाशयति -

**प्राज्यं सुवर्णकुसुमं पृथिवीमिदानीं  
चिन्वन्ति चित्रचरिताः पुरुषास्त्रयो हि ।  
नेता स्वकर्नचतुरः सुमहान् वणिक् च  
सेवाविधौ सुचतुरः पुनरत्र यो वा ॥<sup>9</sup>**

पृथिवीपृष्ठे ये मानवाः सन्ति ते त्रयस्तावत् चतुराः भवन्ति । प्रथमो नेता, द्वितीयः व्यवसायी, तृतीयः सेवकः । कविरत्र आलङ्कारिकस्य आनन्दवर्द्धनस्य ध्वन्यालोकग्रन्थस्य प्रथमोद्यते विद्यमानम् -

**सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः ।  
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ॥<sup>10</sup>**

इत्यादिकं श्लोकम् अनुसृत्य इदं पद्यं रचयति । अतः कवेः न केवलं काव्येषु अपि तु काव्यशास्त्रेषु गम्भीरं ज्ञानमस्तीति वक्तुं शक्यते ।

परवर्तिनि श्लोके कविः वनरक्षिजनानां दोषान् आलोचयति । वृक्षः मानवजीवनस्य प्राणधारणार्थं नितान्तम् आवश्यकः । वनानि संरक्षणीयानि चेत् वृक्षाः सुरक्षिताः भवेयुः । अस्माकं देशे प्रत्येकेषु राज्येषु वनरक्षणः नियुक्ताः । शिल्पकरणाय नूतनमार्गनिर्माणाय च वृक्षाणां छेदनं कुर्वन्ति । ते वनरक्षणः धनलोभिनः । एते काष्ठानि विक्रीय अर्थम् उपार्जयन्ति । नीतिहीनः मानवः अज्ञानवशात् धनलोभाच्च प्रकृतिं नाशयति, स्वयमेव नश्यति । एतेन भविष्यं वंशधरं प्रति आपद् आयाति ।

**राज्येऽपि येऽत्र वनरक्षिजना नियुक्ताः  
पश्यत्सु तेषु विपिनं क्षयमेति नित्यम् ।  
निर्माय हर्म्यमचिरान्निजमैव ते तु  
कालं नयन्ति धनधान्ययुताः सुखेन ॥<sup>11</sup>**

वनरक्षी वनसंरक्षणे साधुतां कुर्यात् चेत् जातीयसम्पदः नाशः न भवति । वनपरिरक्षार्थं वृक्षरोपणं नितान्तम् आवश्यकम् । ये नराः वृक्षरोपणधनम् अपहृत्य पादपः अशुष्कः अपि शुष्करूपेण कथयति तादृशः जनः अवश्यं दण्डनीयः ।

<sup>8</sup> दोषशतकम्, श्लो. ७३

<sup>9</sup> दोषशतकम्, श्लो. ७७

<sup>10</sup> ध्वन्यालोकः, १/१२

<sup>11</sup> दोषशतकम्, श्लो. ७८

चिन्त्यं न चेति विधिनीतिविरुद्धमेतत्  
संशोधनीयमपि सम्प्रति संविधानम् ।  
विशृङ्खला तु बहुला यत एव तस्मात्  
आवश्यकोऽत्र समयोचित एव धर्मः ॥<sup>12</sup>

अस्मिन् श्लोके करमहोदयस्य कथनस्य तात्पर्यं यत् यः मनुष्यः समाजे नीतिविरोधकार्यं करिष्यति सः सम्बिधानाधारेण दण्डनीयः । कारणं अशान्तिं यः जनयति, अधर्मं करोति, नियमं न मानयति, तादृशाय जनाय धर्मः समयोचितं दण्डं ददाति ।

अरण्येषु ये पशून् पक्षिणः च वधन्ति ये च खलजनाः मूकप्रायजन्तूनां क्रयं विक्रयं च कृत्वा अर्थोपार्जनं कुर्वन्ति ते अवश्यं दण्डनीयाः ।

अन्यायकर्मकरणे विभुदण्ड एव  
नूनं पतिष्यति न चिन्तयतीति कोऽपि ।  
धर्मात्प्रमाद्यति जनः सुखलिप्सयांशु  
कालस्य सम्प्रति गतिः कुटिलातिवेलम् ॥<sup>13</sup>

सम्प्रति कालस्य करालगर्भे सर्वे सन्तरन्ति । ये नराः धर्मस्य अवमाननं कुर्वन्ति ते नूनं नष्टं गमिष्यन्ति, समयक्रमेण ते दण्डं च प्राप्स्यन्ति । ये धर्मं मानयन्ति ते सुखेन कालं यापयन्ति ।

राष्ट्रेषु जनसुरक्षार्थं कलहनिवारणाय अथवा शान्तिपरिरक्षणाय सर्वत्र आरक्षिजनानां नियुक्तिः प्रदेया । परन्तु कदाचित् प्रभूतशक्तिहेतोः केषुचिदिह स्वलनं अपि दृश्यते । ते आरक्षणः स्वकर्तव्यं सम्यक्तया न कुर्वन्ति ।

कुत्रापि अतिशयशक्तिबलप्रयोगवशतः कलहः उत्पद्यते । ते कर्तव्यं कर्तुम् अवहेलानां प्रदर्शयन्ति ।

राज्येषु अर्थस्य वृद्धये अनेकाः समवायविभागसंस्थाः प्रचलिताः भवन्ति । तत्रस्थाः कर्मचारिणः सम्यक्तया संस्थायाः तस्याः समीक्षणं न कुर्वन्ति । किञ्च दुर्नीतिं कर्तुं प्रयासं कुर्वन्ति । अतः संस्थानाम् आर्थिकक्षतिः भवति ।

मानवाः प्रायः रोगैः पीडिताः । तेषां रोगदूरीकरणाय स्थाने स्थाने चिकित्सालयं कृत्वा सर्वकारेण चिकित्सकाः नियोजिताः । तत्रापि अनुरोधं कृत्वा अर्थं प्रदाय जनाः चिकित्सां प्राप्नुवन्ति । अन्यथा वैद्याः चिकित्सां कर्तुं नेच्छन्ति ।

मादकद्रव्याणां सेवनेन परिवाराः विनष्टाः । अतः कविः चिन्तितः । प्रत्येकेषु ग्रामेषु मदिरापाचनं, कुत्रापि अन्यमादकद्रव्याणां निर्माणं भवति । मद्यधनादिकमवाप्य सर्वकारीयकर्मचारी कार्यानुष्ठानं न करोति ।

रेलविभागस्य दुर्नीतिविषये वर्णयति कविः । स्थानसंरक्षणे अधिकं अर्थं दत्त्वा यात्रां कुर्वन्ति मानवाः । अत्रापि दुर्नीतिः दृश्यते । किञ्च अस्माकं देशः धर्मनिरपेक्षराष्ट्रम् । परन्तु संख्यालघुजनानां कृते योजना किमर्थम् ? परिवारनियन्त्रणयोजनाऽपि फलवती न भवति प्रकृतचिन्तनाभावात् ।

कविः समाजस्य अस्पृश्यतायाः कारणं पृच्छति । अत्र तु समाजदोषः । शरीरे रक्त - अस्थित-मांसादिकं सर्वमपि समानं चेत् कथम् एतादृशी हीनमानसिकता अस्ति भारतवर्षे ।

निर्वाचनादिसमये व्यवसायिनः यत् स्वदलनिमित्तम् अधिकस्यार्थस्य अपचयं कुर्वन्ति निर्वाचनशेषे विजेतारः नेतारः अधिकं धनं संगृह्णन्ति । अत्र खलराजनीतिः प्रचलति । देशस्य प्रगतिः बहुदूरे । तदर्थं निर्वाचनसमये जनेभ्यः नैकाः प्रतिश्रुतयः दीयन्ते । तत् सर्वं तु कार्यं न सफलीभवति । निर्वाचनपरवर्तिसमये तैल्यादिकसामग्रीणां मूल्यम् अधिकं वर्धते । जनाः सदुःखं यापयन्ति कालम् । सर्वत्र खाद्यसामग्रीणाम् अपमिश्रणं भवति । शुद्धसामग्रीः जनाः न प्राप्नुवन्ति । धनिकव्यवसायिनः अपि तेषामधीने स्थितान् श्रमिकान् पीडयन्ति ।

अस्माकं देशे साधुजनाः अपि तिष्ठन्ति, सर्वेऽपि न नीतिहीनाः । परन्तु कविना विन्दुविषं तु सुधां गरलीकरोति इति उच्यते ।

इत्थं दोषशतकेऽस्मिन् काव्ये कविः समाजे व्यक्तौ राज्यशासने राष्ट्रशासने अन्यत्र च स्थले कुत्र कुत्र कथं दोषः अवेक्ष्यते तत् सर्वं सविस्तरमुक्त्वा एतेषां परिहारे सर्वे शान्तिं सुखं च प्राप्स्यन्तीति सर्वान् परामृशति ।

दुर्नीतिः उत्पाटनाय सर्वे यतमानाः भवन्तु इति तस्य नम्रं निवेदनम् ।



<sup>12</sup> दोषशतकम्, श्लो. ८२

<sup>13</sup> दोषशतकम्, श्लो. ८४

## हिंदी पत्रकारिता में हिंदी-उर्दू विभाजन की ऐतिहासिक प्रक्रिया

रोहित रावत\*

### शोध सार

हिंदी-उर्दू विवाद आधुनिक भारत के सबसे दीर्घकालीन और वैचारिक रूप से उत्तेजक विवादों में से एक था, जो विशेष रूप से संयुक्त प्रांत (आधुनिक उत्तर प्रदेश) में तीव्र रूप से प्रकट हुआ। हिंदी-उर्दू विवाद ने भारतीय इतिहासलेखन में एक विशिष्ट और व्यापक साहित्य को जन्म दिया है। स्थानीय बनाम गैर-स्थानीय भाषाई प्रतिस्पर्धा के रूप में इसे देखना अपर्याप्त है, वास्तव में यह विवाद सांस्कृतिक संप्रभुता, धार्मिक पहचान, और औपनिवेशिक राज्य की वैधता पर नियंत्रण को लेकर चले एक गहरे प्रतीकात्मक तथा भौतिक संघर्ष के रूप में उभरता है। इस बहस ने इतिहासकारों को महत्वपूर्ण प्रश्नों पर पुनर्विचार के लिए प्रेरित किया है, क्या हिंदी-उर्दू विभाजन मूलतः धार्मिक ध्रुवीकरण से संचालित था, या फिर यह औपनिवेशिक नीतियों और ज्ञान-निर्माण की प्रक्रियाओं का एक निर्मित परिणाम था? राष्ट्रवादी राजनीति में भाषा की भूमिका कितनी समावेशी तथा कितनी विभाजक थी? और प्रिंट पूंजीवाद, उभरती मध्यवर्गीय आकांक्षाओं तथा वर्ग-संरचनाओं के साथ भाषाई राजनीति का अंतर्संबंध किस प्रकार विकसित हुआ? यह पूरा विमर्श न केवल भाषाई इतिहास, बल्कि औपनिवेशिक आधुनिकता और उत्तर-औपनिवेशिक पहचान-निर्माण की जटिलताओं को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण ढांचा प्रदान करता है।

**मुख्य शब्द** - औपनिवेशिक, विभाजित, हिंदुस्तानी, भाषाई, सांस्कृतिक, साहित्यिक

हिंदी-उर्दू विभाजन की भाषाई जड़ें 1837 में ब्रिटिश भाषा सुधार के तहत अदालती और प्रशासनिक अभिलेखों में फारसी की जगह स्थानीय भाषाओं का इस्तेमाल करने के निर्णय में हैं। यद्यपि इससे हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं का प्रवेश हुआ, लेकिन औपनिवेशिक अधिकारी अक्सर उर्दू की प्राचीन साहित्यिक स्थिति से सहानुभूति रखते थे, इसे आधिकारिक भाषा के रूप में अधिक प्राथमिकता देते थे।<sup>1</sup> इस वरीयता ने हिंदू मध्यमवर्ग में उत्तेजना पैदा की, जिसने उर्दू को सांस्कृतिक और प्रशासनिक क्षेत्रों में मुस्लिम प्रभुत्व से जोड़ा।

पॉल आर. ब्रास का अध्ययन इस बात का आधारभूत विश्लेषण प्रदान करता है कि हिंदी-उर्दू संघर्ष ने किस तरह राजनीतिक लामबंदी के रूप में काम किया, खास तौर पर संयुक्त प्रांत में। ब्रास हिंदी राष्ट्रवाद के उद्भव को न्यायालयों, शिक्षा और प्रशासन में उर्दू के बजाय हिंदी को बढ़ावा देकर नौकरशाही और राजनीतिक सत्ता हासिल करने के कुलीन हिंदू प्रयासों के संदर्भ में देखते हैं।<sup>2</sup> वे दर्शाते हैं कि कैसे नागरी प्रचारिणी सभा, हिंदी साहित्य सम्मेलन और आर्य समाज जैसी संस्थाओं ने हिंदी को जनभाषा के रूप में मानने के विचार के इर्द-गिर्द उभरते हिंदू मध्यम वर्ग को संगठित किया, भले ही इस मानकीकृत हिंदी का स्थानीय बोली से कोई खास संबंध नहीं था।<sup>3</sup> ब्रास हिंदी आंदोलन को उर्दू के लिए मुस्लिमों की मांग के खिलाफ जानबूझकर की गई जवाबी लामबंदी के रूप में देखते हैं, खासकर तब जब ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन ने भाषाई समझौते के संकेत दिखाने शुरू कर दिए थे।

वर्ष 1900 का यूपी सरकार का प्रस्ताव जिसमें अदालतों में फारसी लिपि के साथ नागरी को भी स्वीकार किया गया था, इसका एक उदाहरण है: प्रताप और अभ्युदय जैसे समाचार पत्रों ने जीत के रूप में

\* शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

<sup>1</sup> British Library, *India Office Records*, Home Department, File No. 187/Language Policy, 1837-39.

<sup>2</sup> Paul R. Brass, *Language, Religion and Politics in North India* (Cambridge: Cambridge University Press, 1974), 106-138.

<sup>3</sup> *Ibid.*, 122

इसका स्वागत किया गया, इसे जर्मीदार जैसे उर्दू अखबारों ने हिंदू कट्टरपंथियों को रियायत के रूप में देखा।<sup>4</sup> जैसा कि ब्रास ने लिखा है, हिंदी आंदोलन ने खुद को उर्दू के विरोध में परिभाषित किया और उर्दू आंदोलन, बदले में, हिंदी के विरोध में खड़ा हुआ। भाषा के लिए शुरू हुआ अभियान सांप्रदायिक शत्रुता में बदल गया।<sup>5</sup>

जानेंद्र पांडे के विचार में भाषा एक नौकरशाही और ज्ञानमीमांसा का साधन बन गई।<sup>6</sup> लिपि (नागरी या फारसी), धर्म (हिंदू या मुसलमान), और भाषण (हिंदी या उर्दू) के आधार पर जनसंख्या का वर्गीकरण औपनिवेशिक शासन की प्रशासनिक स्पष्टता और नियंत्रण की आवश्यकताओं से उत्पन्न हुआ। इस प्रक्रिया ने उन सामाजिक, भाषाई श्रेणियों को कठोर बना दिया जो पूर्व-औपनिवेशिक भारत में कहीं अधिक तरल और संदर्भ पर निर्भर थीं। पांडे विशेष रूप से इस विडंबना को रेखांकित करते हैं कि हिंदुओं और मुसलमानों दोनों के बीच व्यापक रूप से बोली जाने वाली साझा भाषा हिंदुस्तानी जो दैनिक संचार का माध्यम थी, को औपनिवेशिक ज्ञान व्यवस्था ने हिंदी और उर्दू में विभाजित किया, क्योंकि राज्य को स्पष्ट, सुपाठ्य और वर्गीकृत शासन योग्य विषय चाहिए थे।<sup>7</sup>

पांडे इस प्रक्रिया में पत्रकारिता और राजनीतिक समाजों की संलिप्तता की ओर भी इशारा करते हैं। उदाहरण के लिए अभ्युदय ने 1913 में दावा किया: "हमारा दावा उर्दू का विरोध करने का नहीं है, बल्कि हिंदी को उसके सही दर्जे पर बहाल करने का है। फिर भी जो लोग उर्दू का बचाव करते हैं वे इसे एक हमले के रूप में देखते हैं, शायद इसलिए कि उनका प्रभुत्व खतरे में है।<sup>8</sup> जहाँ पॉल ब्रास हिंदी-उर्दू विवाद को अभिजात वर्ग की राजनीतिक रणनीति और प्रतिस्पर्धी हितों के विस्तार के रूप में देखते हैं, वहीं जानेंद्र पांडे इस दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए यह तर्क देते हैं कि सांप्रदायिक पहचान न तो पूर्व-निर्धारित थीं और न ही ऐतिहासिक रूप से अपरिहार्य।<sup>9</sup> पांडे के अनुसार, कठोर धार्मिक और भाषाई समुदायों का निर्माण औपनिवेशिक शासन की प्रशासनिक स्पष्टता, वर्गीकरण, और जनगणना आधारित शासन की संरचनाओं के माध्यम से हुआ, जिसने इन पहचान की रेखाओं को स्थायी और संस्थागत बना दिया।<sup>10</sup>

इस तरह औपनिवेशिक राज्य केवल मौजूदा सामाजिक विभाजनों को दर्ज करने वाला तटस्थ पर्यवेक्षक नहीं था, बल्कि स्वयं इन श्रेणियों को गढ़ने और दृढ़ करने वाला एक सक्रिय राजनीतिक कर्ता था। इस तरह के आख्यानो ने शून्य योग राजनीति पैदा हुई, जो भाषाई विकास को सांस्कृतिक विस्थापन के रूप में देखा गया।

आलोक राय हिंदी के राष्ट्रभाषा के रूप में निर्माण की उत्तर-औपनिवेशिक आलोचना करते हुए तर्क देते हैं कि इस प्रक्रिया में भाषा का एक सुनियोजित वैचारिक संस्कृतीकरण किया गया।<sup>11</sup> उनके अनुसार, मालवीय जैसे राष्ट्रवादी नेताओं और महावीर प्रसाद दविवेदी जैसे साहित्यिक सुधारकों ने हिंदी को फारसी और अरबी प्रभावों से मुक्त करने का प्रयास किया, जिसके परिणामस्वरूप यह भाषा अपने बहुलक और लोक आधारित रूप हिंदुस्तानी से दूर होती गई। राय इस शुद्ध हिंदी परियोजना की आलोचना करते हुए कहते हैं कि इस प्रयास ने मुसलमानों, दलितों तथा क्षेत्रीय बोलियों के बोलने वालों के सांस्कृतिक बहिष्कार को संरचनात्मक रूप से बढ़ावा दिया।<sup>12</sup> आगे वे यह भी लिखते हैं कि हिंदी का राष्ट्रभाषा के रूप में उदय उन लाखों लोगों को राजनीतिक और

<sup>4</sup> Zamindar, "Court Language ki Nainsaafi," February 1901.

<sup>5</sup> Brass, *Language, Religion and Politics*, 134.

<sup>6</sup> Gyanendra Pandey, *The Construction of Communalism in Colonial North India* (Delhi: Oxford University Press, 1990), 45–52.

<sup>7</sup> Ibid., 60–75.

<sup>8</sup> Abhyuday, "Nyay aur Hindi," March 1913.

<sup>9</sup> Brass, *Language, Religion and Politics*, 124–130.

<sup>10</sup> Pandey, *The Construction of Communalism*, 54–72.

<sup>11</sup> Alok Rai, *Hindi Nationalism* (Hyderabad: Orient Blackswan, 2000), 1–12.

<sup>12</sup> Ibid., 38–45.

सांस्कृतिक रूप से वंचित करने का माध्यम बना, जिनकी दैनंदिन भाषा हिंदुस्तानी थी, उनकी आवाज़ अब राष्ट्र के लिए उपयुक्त नहीं मानी गई।<sup>13</sup>

हिंदी-उर्दू विवाद जिस तीव्र रूप से 1920 से 1940 के दशक में उभरा, उसी ऐतिहासिक क्षण में प्रगतिशील लेखक संघ का गठन हुआ। 1936 का लखनऊ सम्मेलन, जिसे हिंदी-उर्दू साहित्यिक इतिहास में एक निर्णायक मोड़ के रूप में देखा जाता है, न केवल साहित्यिक नवजागरण का उद्घोष था बल्कि भाषा, राष्ट्रवाद और संस्कृति को लेकर चल रही गहरी बहसों में एक वैचारिक दखल भी था।<sup>14</sup> हिंदी-उर्दू का विभाजन केवल भाषाई मुद्दा नहीं था, यह उत्तर भारत के औपनिवेशिक अनुभवों, सांप्रदायिक राजनीति के बढ़ते प्रभाव, और राष्ट्रवादी कल्पनाओं के भीतर सांस्कृतिक वैधता की लड़ाई से जुड़ा हुआ था। इस संदर्भ में प्रगतिशील लेखक संघ का उदय इस विवाद के लिए एक वैकल्पिक, जनवादी और वर्ग संघर्ष पर आधारित ढाँचे को उपलब्ध कराता है।

प्रगतिशील लेखक संघ के प्रमुख लेखक साजिद ज़हीर, प्रेमचंद, फैज़ अहमद फैज़, अली सरदार जाफ़री, कृष्ण चंदर और इस्मत चुगताई, भाषाई बहस को अभिजात्य सांस्कृतिक राष्ट्रवाद या धार्मिक पहचान की नींव पर देखे जाने का विरोध करते थे।<sup>15</sup> उनके लिए हिंदी और उर्दू दो सामुदायिक भाषाएँ नहीं थीं। वे एक साझा भाषायी और सांस्कृतिक इतिहास में विकसित जनभाषाएँ थीं, जिनकी जड़ें हिंदुस्तानी की जीवंत परंपरा में थीं। यह रुख हिंदी-उर्दू विवाद में एक महत्वपूर्ण हस्तक्षेप था क्योंकि यह उस समय की राष्ट्रवादी परियोजनाओं द्वारा प्रचलित शुद्ध हिंदी बनाम मुहावरेदार उर्दू के सांप्रदायिक द्विभाजन को चुनौती देता था।

1936 के लखनऊ सम्मेलन में प्रेमचंद का अध्यक्षीय भाषण इस वैचारिक दिशा को स्पष्ट करता है।<sup>16</sup> उन्होंने कहा कि साहित्य तभी जनोन्मुखी और प्रगतिशील हो सकता है जब वह उन भाषाओं में लिखा जाए जिन्हें जनता वास्तव में बोलती है और वह भाषा थी हिंदुस्तानी। इस भाषण में प्रेमचंद ने हिंदी-उर्दू विवाद के सांप्रदायिक रूपांतरण की सीधी आलोचना की और इसे औपनिवेशिक शासन की सांख्यिकीय वर्गीकरण प्रणाली तथा स्थानीय अभिजात्य वर्ग की सांस्कृतिक राजनीति का परिणाम बताया।

इसी समय, हिंदी और उर्दू दोनों के प्रमुख अखबारों ने प्रगतिशील लेखक संघ के उदय को भाषा विवाद के व्यापक संदर्भ में देखा। उदाहरण के लिए, अभ्युदय 1936 के एक संपादकीय में प्रगतिशील लेखकों की पहल को इस रूप में रेखांकित किया गया कि "साहित्य तभी राष्ट्र की सेवा कर सकता है जब वह जनता की साझी भाषा, हिंदुस्तानी में बोले।"<sup>17</sup> प्रताप में 1937 के एक लेख ने हिंदी-उर्दू विवाद को 'औपनिवेशिक प्रशासन की उपज' बताते हुए कहा कि भाषा को सांप्रदायिक रूप देना राष्ट्रवादी एकता के विरुद्ध है और प्रगतिशील आंदोलन इस विभाजन को चुनौती दे रहा है।<sup>18</sup> इसी तरह आज 1938 ने प्रगतिशील लेखक संघ के हस्तक्षेप की सराहना करते हुए लिखा कि हिंदुस्तानी का साझा आधार उत्तर भारत के सांस्कृतिक जीवन की सबसे बड़ी शक्ति है, और इसे राजनीतिक संघर्षों के कारण विभाजित करना राष्ट्रवाद की बुनियाद को कमजोर करता है।<sup>19</sup>

प्रगतिशील लेखक संघ के हस्तक्षेप का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा यह था कि उसने हिंदी-उर्दू विवाद को सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की संकीर्ण धारणाओं से निकालकर वर्ग, जनवाद, औपनिवेशिक दमन और साम्राज्यवादम विरोध के व्यापक राजनीतिक ढाँचे में पुनर्स्थापित कर दिया। इससे भाषा का प्रश्न धार्मिक पहचान के बजाय

<sup>13</sup> Ibid., 62–63.

<sup>14</sup> Sajjad Zaheer, *Roshmai* (Delhi: Rajkamal Prakashan, 2006), 12–18.

<sup>15</sup> Carlo Coppola, "Progressive Writers' Movement," *Journal of South Asian Literature* 8, no. 1 (1973): 1–10.

<sup>16</sup> Premchand, "Presidential Address, 1936," in *Progressive Writers' Association Archives*, Nehru Memorial Museum & Library, New Delhi.

<sup>17</sup> *Abhyudaya* 12 April 1936.

<sup>18</sup> *Pratap* "Bhasha aur Sampradayikta," 7 August 1937.

<sup>19</sup> *Aaj* "Hindustani aur Rashtra," 15 March 1938.

सामाजिक न्याय, वर्गचेतना और जन- राजनीति के दायरे में आ गया। साजिद ज़हीर और प्रेमचंद दोनों ने यह स्पष्ट रूप से कहा कि भाषा को राष्ट्र की आत्मा बनाने की बहस तभी सार्थक है जब वह राष्ट्र की पूरी जनता को शामिल करे न कि केवल एक संस्कृतिवादी, उच्च मध्यवर्गीय या संप्रदाय विशिष्ट धारा को।<sup>20</sup>

यद्यपि प्रगतिशील लेखक संघ ने प्रत्यक्ष रूप से भाषाई विवाद को सुलझाने का लक्ष्य नहीं रखा, परंतु उसके वैचारिक हस्तक्षेप-हिंदुस्तानी की साझा परंपरा पर जोर, भाषा का जनवादीकरण, और साम्प्रदायिक भाषायी राजनीति की आलोचना ने हिंदी-उर्दू बहस में एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक और राष्ट्रवादी धारा को जन्म दिया, जिसने औपनिवेशिक उत्तराधिकार में भाषा और राष्ट्रवाद के संबंध को गहराई से प्रभावित किया। इस संस्कृतनिष्ठ हिंदी को शिक्षा, मीडिया और उत्तर-औपनिवेशिक नौकरशाही में संस्थागत रूप दिया गया, यह न केवल एक भाषा बन गई बल्कि एक सांस्कृतिक द्वारपाल तंत्र बन गई। आज में 1946 के संपादकीय में इस भावना को दोहराया गया:

*"हिंदी को हमारी सभ्यता के मूल का प्रतिनिधित्व करना चाहिए। विदेशी भाषा का प्रयोग भारत को एकजुट नहीं कर सकता।"*<sup>21</sup>

फ्रांसेस्का ओरसिनी ने इस बहस को साहित्यिक और सांस्कृतिक नजरिए से देखा है। वह दर्शाती हैं कि कैसे हिंदी और उर्दू ने अलग सौंदर्यशास्त्र, शैलियों और जनता के साथ समानांतर प्रिंट संस्कृतियां विकसित की। जहाँ उर्दू ने कविता और परिष्कार के साथ अपना जुड़ाव जारी रखा, वहीं हिंदी ने नैतिक सुधार, राष्ट्रवाद और उपदेशवाद को तेजी से अपनाया, विशेषकर महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादकीय नेतृत्व में।<sup>22</sup>

सरस्वती पत्रिका में द्विवेदी ने न केवल साहित्यिक मानदंडों को पुनर्परिभाषित किया बल्कि एक अनुशासित, तर्कसंगत, राष्ट्रवादी आधुनिक हिंदी पुरुष का भी निर्माण किया। उन्होंने कविता की तुलना में गद्य को, रूमनियत की तुलना में नैतिक सुधार को और फारसी अभिव्यक्तियों की तुलना में हिंदू संस्कृत मुहावरों को बढ़ावा दिया।<sup>23</sup> ओरसिनी का तर्क है कि इस तरह की साहित्यिक परियोजनाओं ने भाषाई सीमाओं को भावनात्मक और राजनीतिक सीमाओं के रूप में संस्थागत बनाने में मदद की। भाषा एक साधन नहीं रह गई थी, वह आत्म-पहचान का प्रतीक बन गई।

क्रिस्टोफर आर. किंग के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में हिंदी और उर्दू के बीच विभाजन केवल साहित्यिक या भाषाई स्तर पर नहीं, बल्कि संस्थागत ढांचे के भीतर गहराई से संचालित था। किंग दिखाते हैं कि कैसे शब्दावली, लिपि, पाठशाला शिक्षा और शासन, प्रशासन की भाषिक आवश्यकताओं को लेकर दोनों भाषाएँ अलग-अलग दिशाओं में विकसित की गईं।<sup>24</sup> हिंदी राष्ट्रवादियों ने देवनागरी का समर्थन केवल सांस्कृतिक पुनरुत्थान के उपकरण के रूप में नहीं किया, बल्कि उसे औपचारिक संस्थागत मान्यता दिलाने के लिए भी सक्रिय अभियान चलाया, नगरपालिका बोर्डों, स्कूल पाठ्यक्रमों और न्यायिक प्रक्रियाओं में देवनागरी को स्थापित करने की मांग इसी रणनीति का हिस्सा थी।<sup>25</sup>

सलिल मिश्रा इस बहस में एक क्षेत्रीय आयाम जोड़ते हैं। हिंदी पट्टी पर अपने निबंधों में, वे तर्क देते हैं कि हिंदी राष्ट्रवाद का उदय उत्तर भारतीय क्षेत्रीय पहचान बनाने से जुड़ा था, खासकर यूपी, बिहार और मध्यभारत में। हिंदी को न केवल संस्कृति की भाषा के रूप में बल्कि हिंदी भाषी किसान जनता की आत्मा के

<sup>20</sup> Rai, *Hindi Nationalism*, 55–60.

<sup>21</sup> Aaj, "Rashtra aur Hindi," January 1946, .

<sup>22</sup> Orsini, *The Hindi Public Sphere*, 31–64.

<sup>23</sup> Ibid., 84.

<sup>24</sup> Christopher R. King, *One Language, Two Scripts: The Hindi Movement in Nineteenth-Century North India* (New Delhi: Oxford University Press, 1994), 5–6.

<sup>25</sup> Ibid., 42–49.

रूप में भी गढ़ा गया।<sup>26</sup> उन्होंने इस बात की पड़ताल की कि कैसे हिंदी को नैतिक, मर्दाना और आधुनिक के रूप में स्थापित किया गया, जबकि उर्दू को पतनशील, कुलीन या विदेशी के रूप में चित्रित किया गया। आर्य समाज नेटवर्क, हिंदी सभाएँ और जाति संघों ने हिंदी के इर्द-गिर्द एकजुट होकर एक एकीकृत हिंदू आत्मीयता का निर्माण किया, जहाँ हिंदी उत्थान और राष्ट्रवाद का माध्यम बन गई।<sup>27</sup>

निम्नवर्गीय दृष्टिकोण से शाहिद अमीन इस बात पर बल देते हैं कि भाषा को केवल अभिजात वर्ग की परियोजना के रूप में नहीं समझा जा सकता, बल्कि यह देखना आवश्यक है कि साधारण लोग उस अभिजन नियंत्रित भाषाई एजेंडे के साथ किस प्रकार बातचीत करते हैं और उसे अपने सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में पुनर्व्याख्यायित करते हैं।<sup>28</sup> अपने प्रभावशाली निबंध 'गांधी एज महात्मा' में अमीन दिखाते हैं कि राष्ट्रवादी हलकों द्वारा हिंदी की राष्ट्रभाषा के रूप में तैनाती अक्सर ग्रामीण उत्तर भारत की वास्तविक भाषिक स्थितियों से कटकर थी, जहाँ अधिकांश लोग बोलचाल की हिंदुस्तानी, स्थानीय बोलियों या मिश्रित भाषिक रजिस्टर का प्रयोग करते रहे।<sup>29</sup>

अमीन का योगदान मूलतः पद्धतिगत है: वे चेतावनी देते हैं कि राष्ट्रवादी अभिजनों के भाषाई दावों को प्रत्यक्ष ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्वीकार करना सैद्धांतिक रूप से त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि इससे उन बहुभाषिक अनुभवों को अनदेखा कर दिया जाता है जो औपचारिक विमर्श के बाहर ग्रामीण और निम्नवर्गीय समुदायों में निरंतर सक्रिय थे।<sup>30</sup> इसलिए वे इतिहासकारों से आग्रह करते हैं कि अशिक्षित जनसमूहों के बीच भाषा के स्थानीय अनुभवों, उनके अर्थ निर्माण तथा संप्रेषण की सूक्ष्म प्रक्रियाओं को इतिहास लेखन में पुनर्स्थापित किया जाए।<sup>31</sup>

यह समझने के लिए कि भाषाई राजनीति किस प्रकार सांस्कृतिक और नैतिक सुधार में अंतर्निहित है, मदन मोहन मालवीय और महावीर प्रसाद द्विवेदी की भूमिका अपरिहार्य है, हिंदी के बारे में मालवीय का दृष्टिकोण आध्यात्मिक और राज्यवादी दोनों था। उन्होंने हिंदी को राष्ट्रीय एकता की जननी कहा और हिंदी को अदालती और स्कूली भाषा बनाने के लिए अभियान चलाया।<sup>32</sup> उन्होंने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में हिंदी की पाठ्यपुस्तकों और मानकीकृत व्याकरण मार्गदर्शिकाओं की रचना की और कहा कि हिंदी ही भारत की प्राचीन आत्मा को व्यक्त कर सकती है। सरस्वती के संपादक द्विवेदी ने हिंदी साहित्य में द्विवेदी युग (1903-1920) का नेतृत्व किया, जिसमें व्याकरणिक अनुशासन, नैतिक उन्नति और देशभक्ति को प्राथमिकता दी। ऐसा करने से उन्होंने सौंदर्य और वैचारिक रूप से आधुनिक हिंदी राष्ट्रवाद की नींव रखी।<sup>33</sup> अपने लेखों में द्विवेदी अक्सर उर्दू को विलासता और आलस्य की भाषा बताते थे और हिंदी को श्रम, तर्क और राष्ट्रीय अनुशासन के लिए उपयुक्त बताते थे।

हिंदी-उर्दू विवाद दो भाषाई समुदायों के बीच गलतफहमी नहीं थी। यह प्रतिनिधित्व, संबद्धता और सत्ता को लेकर एक संरचित, दीर्घकालिक प्रतिस्पर्धा थी। इस समीक्षा की विद्वतापूर्ण व्याख्याएँ- ब्रास की राजनीतिक लामबंदी से लेकर अमीन की निम्नवर्गीय आलोचना तक, दर्शाती है कि औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक भारत में भाषा ने न केवल संचार के माध्यम के रूप में काम किया, बल्कि पहचान निर्माण,

<sup>26</sup> Salil Mishra, *Becoming a Political Subject* (New Delhi: Permanent Black, 2011), 38–66.

<sup>27</sup> Ibid., 71.

<sup>28</sup> Shahid Amin, "Approver's Testimony, Judicial Discourse: The Case of Chauri Chaura," in *Subaltern Studies V: Writings on South Asian History and Society*, ed. Ranajit Guha (Delhi: Oxford University Press, 1987), 209–210.

<sup>29</sup> Shahid Amin, "Gandhi as Mahatma," in *Selected Subaltern Studies*, eds. Ranajit Guha and Gayatri Chakravorty Spivak (New York: Oxford University Press, 1988), 288–295.

<sup>30</sup> Amin, "Gandhi as Mahatma," 297–300.

<sup>31</sup> Shahid Amin, *Event, Metaphor, Memory: Chauri Chaura, 1922–1992* (Berkeley: University of California Press, 1995), 24–30.

<sup>32</sup> Madan Mohan Malaviya, "Hindi aur Rashtra," in *Collected Speeches*, ed. R.P. Mishra (Allahabad: BHU Archives, 1965), 233.

<sup>33</sup> Ibid.

बहिष्कार और राष्ट्र निर्माण की साइट के रूप में भी काम किया। प्रिंट, नीति, शिक्षण और विवाद के माध्यम से, हिंदी और उर्दू भारत की दो प्रतिद्वंद्वी कल्पनाओं को मूर्त रूप देने लगीं, एक संस्कृत नैतिक शुद्धता और जनसांख्यिकीय बहुसंख्यकवाद में निहित है, दूसरा इंडो-फारसी महानगरीयता और साहित्यिक विरासत में। आधुनिक भारत की सांप्रदायिक, सांस्कृतिक और संवैधानिक दुविधाओं को समझने के लिए इस संघर्ष को समझना आवश्यक था। 20वीं सदी की शुरुआत में बनारस में हिंदी साहित्य सम्मेलन और नागरी प्रचारिणी सभा हिंदी को राज्य मान्यता दिलाने की मांग कर रहे थे। हिंदी पत्रिकाओं और पुस्तिकाओं ने इस आंदोलन को सहानुभूतिपूर्ण स्थान दिया। अभ्युदय के 5 जुलाई 1910 के अंक में लिखा गया था:

*"उर्दू को अदालत की भाषा बनाकर जिस तरह से हिंदी भाषियों का अपमान हुआ है, वह क्षमा योग्य नहीं। हिंदी में न्याय का अधिकार हर नागरिक को है।"*<sup>64</sup>

इस तरह के बयानों से यह स्पष्ट होता है कि भाषाई मुद्दा नागरिक अधिकारों और सांस्कृतिक गरिमा के विचारों से किस तरह जुड़ा हुआ है, खासकर उत्तर प्रदेश के राजनीतिक केंद्र में। इस भाषाई राष्ट्रवाद का केंद्र लिपि मान्यता के लिए संघर्ष था, हिंदी के लिए नागरी और उर्दू के लिए फ़ारसी, अरबी। 1900 में भारी याचिकाओं के बाद यूपी सरकार द्वारा उर्दू के साथ नागरी लिपि को स्वीकार करने की इच्छा को हिंदी अखबारों ने राष्ट्रीय जीत के रूप में सराहा। प्रताप ने अपने 3 अप्रैल 1900 के संपादकीय में लिखा:

*"देवनागरी को स्थान दिलाने में जनता की दृढ़ता और पत्रकारों की कलम की शक्ति ने सिद्ध कर दिया कि हिंदी को अब कोई रोक नहीं सकता।"*<sup>65</sup>

नौकरशाही की चिंता और पत्रकारिता की सक्रियता का यह सम्मिलन यह दर्शाता है कि हिंदी पत्रकारिता ने किस प्रकार भाषाई दबाव समूह को आकार दिया है, और उसी से वह आकार लेती रही है। 1920 के दशक तक, हिंदी-उर्दू विवाद सांप्रदायिक हो चुका था। जमींदार, मंसूर और अल-जमीअत जैसे उर्दू अखबारों ने हिंदी पत्रकारों पर मुस्लिम सांस्कृतिक विरासत को मिटाने का प्रयास करने का आरोप लगाया। इसके विपरीत, हिंदी पत्रकारों ने उर्दू को विदेशी थोपा हुआ बताया। 5 अक्टूबर 1925 के अंक में, आज ने लिखा :

*"उर्दू न तो भारत की जनभाषा है, न इसकी आत्मा से जुड़ी हुई। यह तो एक शासक वर्ग की भाषा है, जिसे हिंदी जनता पर थोपा गया है।"*<sup>66</sup>

हिंदी पत्रकारिता ने प्रतीकात्मक राजनीति और जन-आंदोलन को बढ़ावा दिया। 1930 में, प्रताप ने इलाहाबाद के उन विद्यार्थियों को वीर बालक कहा जिन्होंने परीक्षाओं में उर्दू में लिखने से इनकार कर दिया था।<sup>37</sup> ऐसी लिखित चर्चाओं ने भावनाओं को भड़काया और भाषाई पहचान को जन-प्रतिरोध का एक रूप बनाने में योगदान दिया। महात्मा गांधी द्वारा नागरी और फ़ारसी दोनों लिपियों में एक समन्वित भाषा हिंदुस्तानी की वकालत का उदारवादी अखबारों ने सावधानी से स्वागत किया, लेकिन कट्टरपंथी हिंदी पत्रिकाओं ने इस पर हमला किया। एक विशेष अंक में अभ्युदय ने 14 फ़रवरी 1936 को गांधी के प्रस्ताव की आलोचना की:

*"महात्मा गांधी को भले ही 'हिंदुस्तानी' प्रिय हो, पर हम हिंदी के साथ कोई समझौता नहीं करेंगे। देवनागरी ही राष्ट्र की लिपि होगी।"*<sup>68</sup>

<sup>34</sup> *Abhyuday*, "Nyay aur Hindi ka Haq," 5 July 1910.

<sup>35</sup> *Pratap*, "Devnagari ki Vijay," 3 April 1900.

<sup>36</sup> *Aaj*, "Urdu ka Kya Sthan Hai?," 5 October 1925.

<sup>37</sup> *Pratap*, "Chhatron ka Balidan," 20 February 1930.

<sup>38</sup> *Abhyuday*, "Rashtra ki Lipi par Samjhauta Nahin," 14 February 1936.

1949 की संविधान सभा की बहसों इस लंबी लड़ाई का चरमोत्कर्ष पर थी। हिंदी साहित्य सम्मेलन और नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा वितरित अभिलेखीय पर्चों से पता चलता है कि हिंदी को राष्ट्रभाषा घोषित करने के लिए समन्वित अभियान चलाए गए थे। भारत के राष्ट्रीय अभिलेखागार में संरक्षित 1948 के एक पर्चे में कहा गया था:

*"हिंदी ही भारत की आत्मा है। यदि हिंदी को राष्ट्रभाषा न बनाया गया, तो स्वतंत्रता अधूरी रह जाएगी।"*<sup>39</sup>

संवैधानिक अभिलेखों से स्पष्ट होता है कि संविधान निर्माण की प्रक्रिया में भाषा का प्रश्न अत्यंत विवादास्पद था। Granville Austin इस स्थिति को संविधान सभा के समक्ष उपस्थित सबसे कठिन और विस्फोटक चुनौती के रूप में वर्णित करते हुए, यह तर्क देते हुए कि भाषा विवाद केवल प्रशासनिक व्यवस्था का प्रश्न नहीं था, बल्कि भारतीय राष्ट्रवाद की दिशा, सामाजिक प्रतिनिधित्व और सांस्कृतिक प्रभुत्व की राजनीति से सीधे जुड़ा हुआ था।<sup>40</sup> अंततः अनुच्छेद 343 के अंतर्गत हिंदी को संघ की आधिकारिक भाषा घोषित किया गया। यद्यपि अंग्रेजी को पंद्रह वर्षों तक सहायक आधिकारिक भाषा के रूप में बनाए रखने का प्रावधान किया गया। एक ऐसा समझौता जो भाषाई विविधता और राजनीतिक संतुलन की अनिवार्य आवश्यकता से उत्पन्न हुआ।<sup>41</sup>

हिंदी पत्रकारिता केवल औपनिवेशिक और आरंभिक उत्तर-औपनिवेशिक उत्तर भारत की भाषाई राजनीति का दर्पण नहीं थी, बल्कि वह इस राजनीति को आकार देने का एक सक्रिय साधन थी। सतत पैरवी, जनमत, निर्माण, और भाषाई, सांस्कृतिक प्रतीकवाद के माध्यम से आज, प्रताप और अभ्युदय जैसे हिंदी समाचार पत्रों ने हिंदी-उर्दू विवाद को भारतीय राष्ट्रवाद के एक निर्णायक विमर्श में बदल दिया। इन पत्रों ने हिंदी को राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थापित करने के लिए प्रभावी वातावरण तैयार किया और संविधान सभा में इसके पक्ष में बनने वाले वैचारिक दबाव को सुदृढ़ किया। परिणामस्वरूप, उर्दू जो कभी उत्तर भारत की साझा, जीवंत और बहुस्तरीय भाषाई परंपरा का केंद्र थी, धीरे-धीरे संस्थागत स्तर पर हाशिये पर चली गई।



<sup>39</sup> Hindi Sahitya Sammelan Pamphlet, "Hindi Rashtrabhasha Banegi," Allahabad, 1948, NMML Pamphlet Archive.

<sup>40</sup> Granville Austin, *The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation* (Oxford: Clarendon Press, 1966), 258–260.

<sup>41</sup> Constitution of India, Article 343.

## हारीति एवं पांचिका की संयुक्त मूर्तियों का प्रतिमा शास्त्रीय अध्ययन : गांधार कला के विशेष सन्दर्भ में

आकाश कुमार\*  
प्रो. अजय प्रकाश खरे\*\*

### सारांश:

भारत वर्ष के धार्मिक इतिहास में बहुदेववाद की प्रकृति के कारण पूजन की अनेक धाराओं का जन्म हुआ। यक्ष पूजा की परम्परा उनमें से एक थी। यक्ष पूजा की महती लोक मान्यता को देखते हुये सभी धर्मों ने अपनी पूजा पद्धति में इसे महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया। प्रस्तुत शोध पत्र भारतीय लोक संस्कृति में गहराई से रची बसी यक्ष पूजा की परंपरा और बौद्ध धर्म में इसके आत्मसातीकरण का विश्लेषण करता है। मुख्य रूप से यह अध्ययन देवी हारीति और उनके पति पांचिक की संयुक्त मूर्तियों के प्रतिमा-शास्त्रीय विकास पर केंद्रित है। साथ ही इसमें गांधार कला एवं मथुरा कला के सदर्भ में हारीति-पांचिक की मूर्तियों में प्राप्त होने वाले प्रतिमाशास्त्रीय अन्तरों को भी विश्लेषित किया गया है।

मुख्य शब्द:- हारीति, पांचिक, गांधार कला, प्रतिमा शास्त्र कार्नुकोपिया, यक्ष परंपरा

### संवाद एवं विश्लेषण :-

भारतीय लोक संस्कृति हमेशा से विविधतापूर्ण रही है, विशेषकर उसकी धार्मिक परम्परा। भारतीय कला में लोक जीवन को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। विभिन्न धार्मिक परम्पराओं में जहाँ एक ओर मुख्य देवों को मान्यता मिली वहीं दूसरी ओर उन अधिदेवों को भी मान्यता मिली जो मुख्यतः धर्म के लौकिक पक्ष से संबंधित थे, इन्हीं लौकिक देवताओं की श्रेणी में यक्ष एक महत्वपूर्ण देवता थे। जहाँ एक ओर इनका उल्लेख वेदों, ब्राह्मणों, उपनिषद, पुराण, जातक, पालि साहित्य के अन्य ग्रंथों, जैन आगम साहित्य, भाष्य, कथा साहित्य आदि में प्राप्त होता है, वहीं दूसरी ओर वर्तमान समय में लौकिक परंपरा के अंतर्गत वीरब्रह्मके रूप में यक्ष पूजा का प्रचलन पूरे भारत में देखा जा सकता है। यक्ष उर्वरता एवं वृष्टि की शक्तियों के दैवीकरण थे, वह मणियों और रत्नों का संधान जानते थे, पृथ्वी के नीचे गड़ी हुई निधियों की जानकारी रखते थे एवं जनसामान्य को धनधान्य से परिपूर्ण करते थे। यक्षों का संबंध लोक में अमरता दीर्घ जीवन स्वास्थ्य वैभव प्रदान कारक देव के रूप में था।

यक्षों की इस महती लोक मान्यता को देखते हुए अन्य प्रमुख धार्मिक परंपराओं की तरह बौद्ध धर्म में भी यक्षपूजा का आत्मसातीकरण किया गया। यक्ष कोपालि भाषा में **यक्ख** एवं प्राकृत में **जक्ख** कहा गया है।<sup>1</sup> कुमारस्वामी महोदय ने यक्ष शब्द का अर्थ खाने वाला या गटकने वाला बताया है परंतु प्रसिद्ध कला मर्मज्ञ वासुदेवशरण अग्रवाल ने इसका खंडन करते हुए यह संकल्पना दी कि वैदिक यक्ष धातु भोजन के अर्थ में न होकर पूजा करने या धार्मिक क्रियाओं के सम्पादन के अर्थ में प्रचलित थी।<sup>2</sup> प्रारंभ में बुद्ध ने 'महदउपट्ठान' या यक्षपूजा को 'तिरच्छानविज्जा' तथा 'मिच्छाविज्जा' अर्थात् तिरस्कृत एवं मिथ्या-विद्या कहा है, जो सामान्य जनों (पुथुज्जन) में फैली हुई थी। किन्तु यक्ष मान्यताओं की लोकप्रियता को देखते हुए बुद्ध ने इसे बौद्ध धर्म में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया।

\* शोध छात्र, प्राचीन इतिहास विभाग, सी.एम. पी. डिग्री कालेज, प्रयागराज

\*\* शोध निर्देशक, प्राचीन इतिहास विभाग, सी.एम. पी. डिग्री कालेज, प्रयागराज

बौद्ध साहित्य में क्रूर एवं दयालु दोनों प्रकार के यक्षों से संबंधित अनेक कथानक प्राप्त होते हैं, परन्तु बौद्ध साहित्य में उनके क्रूर स्वाभावी होने का पक्ष अधिक दृढ़ता के साथ प्राप्त होता है। जातक कथाओं में ऐसे अनेक यक्षों का उल्लेख प्राप्त होता है, जो नर मांस का भक्षण करते थे तथा उनकी गणना राक्षसों के साथ की जाती थी। लेकिन धीरे-धीरे बौद्धों ने यक्षों की पूजा से नरबलि जैसे तत्वों को निकालकर और उनको बलि में निरामिष भोजन दिये जाने का प्रचार करके उनकी पूजा को सम्मानित मानवीय रूप प्रदान किया। अंगुलिमाल भी पहले एक नरभक्षी वृक्षवासी यक्ष था जो बाद में बुद्ध के प्रभाव से द्वारपाल हो गया।<sup>3</sup>

यक्ष पूजा को बौद्ध धर्म में किस तरह वीभत्स से सात्विक रूप में बदला गया, इसका रोचक उदाहरण हारीति की कथा है, जिसमें बुद्ध बच्चों का हरण करने वाली यक्षी को बच्चों की रक्षक देवी के रूप में परिवर्तित कर देते हैं। इसके साथ ही बौद्ध साहित्य में कुछ ऐसे यक्षों का भी उल्लेख प्राप्त होता है जो मानव जाति के संरक्षक एवं हितैषी थे। ऐसे यक्षों में कुबेर सर्वप्रमुख देवता माने जाते हैं। कुबेर की पूजा प्राक बौद्ध काल से लोक में प्रचलित रही थी। अतः बौद्ध धर्म में भी इस सर्वव्यापी परम्परा को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया। बौद्ध धर्म ग्रंथों में कुबेर का वैश्रवण, पांचिक तथा जम्मल नामों से भी उल्लेख किया गया है।

पाञ्चिक कुबेर का एक प्रमुख अभिधान था, जिसका महायान बौद्ध धर्म में व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। पांचिक तथा उसकी पत्नी हारीति की मान्यता गान्धार से लेकर मध्य एशिया तक फैली हुई थी। महावंश में पाञ्चिक एवं हारीति से उत्पन्न 500 बच्चों का उल्लेख प्राप्त होता है।<sup>4</sup> संयुक्तवास्तुनाम के बौद्ध ग्रन्थ में हारीति और पाञ्चिक से संबंधित एक कथानक प्राप्त होता है, राजगृह के संरक्षक नगरदेवता सात की पुत्री अभिरति का विवाह गान्धार के यक्ष राजा पांचाल के पुत्र पांचिक से हुआ, वह 500 पुत्रों की माँ थी एवं उसके सबसे छोटे पुत्र का नाम प्रियांकर था, जो हारीति को अत्यन्त प्रिय था। पिछले जन्म में अभिरति राजगृह के एक चरवाहे की पत्नी थी गर्भवती होने के बाद भीराजगृह वासियों ने उसे एक उत्सव में नृत्य करने के लिए विवश किया, जिससे उसका गर्भपात हो गया। तदोपरान्त स्वक्षति से क्रोधित होकर प्रतिशोध की भावना से अभिरति ने यह शपथ ली कि वह राजगृह में किसी के बच्चे को जीवित नहीं छोड़ेगी। इसके बाद उसका प्राणान्त हो गया, अगले जन्म में अभिरति ने राजगृह में यक्षी के रूप में जन्म लिया तथा पूर्वजन्म का बदला लेने के लिए शिशुओं को चुराकर मारने लगी। कालान्तर में राजगृह के निवासी इसके अत्याचारों से त्रस्त होकर बुद्ध की शरण में पहुंचे और अपने बच्चों को हारीति के प्रकोप से बचाने के लिए प्रार्थना की। महात्मा बुद्ध ने उसके छोटे पुत्र को छिपा दिया इससे हारीति को पुत्र खोने की पीड़ा का अनुभव हुआ, जिससे उसने अपनी इस विद्वेषी प्रवृत्ति को दूर किया तथा लोक में शिशु भक्षिका की जगह शिशु संरक्षिका के रूप में लोकप्रिय हुई।

हवेनसांग<sup>6</sup> एवं इत्सिंग<sup>7</sup> ने भी इस कथा का उल्लेख किया है। इत्सिंग के अनुसार शिशु को गोद में लिए हुए हारीति की आकृतियाँ बौद्ध मठों के भोजनालयों के दीवारों पर चित्रित रहती हैं। बौद्ध कला में हारीति का अंकन दो रूपों में प्राप्त होता है- प्रथम 'हारीति की एकल प्रतिमाए' जिनमें हारीति को एक या एक से अधिक बच्चों के साथ स्वतंत्र रूप से अंकित किया जाता है। दूसरी 'हारीति की संयुक्त प्रतिमाए' जिनमें हारीति को उनके अन्य समकक्षों के साथ कला में उत्कीर्ण किया गया है। इस शोधपत्र में हारीति की पांचिक (कुबेर) के साथ प्राप्त संयुक्त मूर्तियों का प्रतिमाशास्त्रीय अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

कला में कुबेर (पांचिक) को अधिकतर आभूषणों से सुसज्जित, ललितासन मुद्रा में पैर लटकाये हुए बैठा दिखाया गया है। साथ ही उसके बायें हाथ में लम्बा भाला प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार हारीति को बच्चों से घिरी हुई स्थानक या बैठी मुद्रा में प्रदर्शित किया जाता था। जिसके हाथों में अनार, मध्यचषक, अमृत कलश, नेवला आदि का अंकन है। चूंकि हारीति और पांचिका के अंकन में हमें क्षेत्रीय आधार पर अनेक विभिन्नतायें दृष्टिगत होती हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में हम गान्धार कला शैली के अंतर्गत प्राप्त प्रतिमाओं को अपने अध्ययन का आधार बनायेंगे।

#### 40 हारीति एवं पांचिका की संयुक्त मूर्तियों का प्रतिमा शास्त्रीय अध्ययन : गांधार कला के विशेष सन्दर्भ में

##### गांधार कला में हारीति और पांचिक

कुषाण वंश का शासनकाल भारतीय मूर्तिकला की क्रियाशीलता का युग था। इस समय कुषाणों के संरक्षण में भारत के पश्चिमोत्तर भाग में कला के उत्कृष्ट रूप के विकसित होने के प्रमाण प्राप्त होते हैं।

गांधार कला में हारीति और पांचिक की मूर्तियाँ प्राचीन भारतीय कला के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। ये मूर्तियाँ न केवल कलात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, बल्कि धार्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण से गहन अर्थ रखती हैं। प्रतिमाशास्त्र के दृष्टिकोण से इन मूर्तियों का विश्लेषण हमें उस काल के धार्मिक विश्वासों, सामाजिक संरचना और कलात्मक परम्पराओं के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है। बुद्ध की जीवन लीला और जातक कथाओं का अंकन मध्यदेश की कला से ग्रहण करने के साथ-साथ गांधार के शिल्पियों ने ईरानी और यूनानी कला के भी अनेक प्रभाव और अलंकरण स्वीकार किये। स्वभावतः गांधार कला में भारत, ईरानी, एवं यूनान, रोम की कलाओं के प्रभावों का सम्मिलन हुआ।<sup>2</sup> यह प्रभाव गांधार क्षेत्र से प्राप्त हारीति और पांचिका की मूर्तियों में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। हारीति और पांचिक का अंकन गांधार कला की विषय वस्तु का प्रारंभिक आधार रहा है। गांधार कला में हारीति और पांचिक (कुबेर) की स्वतंत्र मूर्तियों के साथ-साथ इनकी संयुक्त मूर्तियों का निर्माण बहुतायत से किया गया। हारीति और पांचिक की कुछ संयुक्त प्रतिमाओं का विवरण निम्नलिखित है-

##### (1) पेशावर संग्रहालय (सं०-241)-

सहरी बहलोल नामक स्थान से प्राप्त और वर्तमान में पेशावर संग्रहालय में संरक्षित इस(मूर्ति क्रमांक -1)

प्रस्तर फलक में गांधार शिल्प की उत्कृष्टता के दर्शन होते हैं। इसकी ऊँचाई 3 फुट 4 इंच है एवं इसकी चौड़ाई 33 इंच है। इस फलक में हारीति और पांचिक को एक साथ यूरोपीय पद्धति में बैठे प्रदर्शित किया गया है। दोनों ने अपना दाहिना पैर पादपीठिका में रखा हुआ है एवं दोनों ने हाथ, पैर एवं कान में आभूषण पहना हुआ है। पांचिक की मूँछें हैं और उसने सर में पगड़ी तथा नीचे धोती पहन रखी है। हारीति ने साड़ी पहन रखी है तथा इसके बाल पीछे की ओर बाँधे गये हैं। इस फलक में हारीति और पांचिक के आस-पास पाँच शिशुओं का अंकन किया गया है। एक शिशु स्तनपान कर रहा है, दो कंधों पर बैठे तथा दो पैरों के पास खड़े अलंकृत हैं। इन्हें मांसल एवं नग्नरूप में अंकित किया गया है, जिनके पैरों में पायल है।<sup>9</sup>

##### (2) पेशावर संग्रहालय (सं०-1416)

यह मूर्ति(मूर्ति क्रमांक -2) शाह जी की ढेरी से प्राप्त हुई है, इसमें भी कुबेर और हारीति को अलग-अलग बैठे प्रदर्शित किया गया है। कुबेर (पांचिक) के दाहिने हाथ में एक लंबा भाला है एवं उसका बायाँ पैर भाले के निचले हिस्से पर टिका हुआ है। हारीति का बायाँ पैर पाद-पीठिका पर रखा है, उसने अपने दाहिने हान में कोई फल पकड़ा हुआ है। इस मूर्ति में पाँच शिशुओं की भी प्रदर्शित किया गया है।<sup>10</sup>

##### (3) हारीति और पांचिक- क्रिस्टीज इमेजेज लिमिटेड लंदन -

क्रिस्टीज में संरक्षित इस(मूर्ति क्रमांक -3) मूर्तिफलक में पांचिक की यक्षों के सेनापति के रूप में दण्ड लिये हुये एवं सैनिकों की वेशभूषा में उत्कीर्ण किया गया है। हारीति को पांचिक के बायीं तरफ बैठे हुये प्रदर्शित किया गया है, हारीति के बायें हाथ में कार्नुकोपिया और दायें हाथ में बीजपूरक का अंकन है। हारीति और पांचिक नंगे पैर आसन में विराजमान हैं, एवं पांचिक प्यार से हारीति की तरफ देख रहा है।<sup>11</sup>

##### (4) इण्डियन म्यूजियम कोलकाता-

गांधार कला से संबंधित हारीति और पांचिक की अनेक संयुक्त प्रतिमायें भारतीय संग्रहालय कोलकाता में संरक्षित हैं। एक प्रतिमा(मूर्ति क्रमांक-4) जो जमालगढ़ी से प्राप्त हुई थी, किन्तु वर्तमान में भारतीय संग्रहालय कोलकाता में संरक्षित है। इस मूर्ति में हारीति एवं पांचिक को एक पेड़ के नीचे खड़ा प्रदर्शित किया गया है जो अब क्षतिग्रस्त हो चुका है। पांचिक का सिर भी क्षतिग्रस्त है यह हारीति के दाहिनी ओर खड़ा है, इसने अपनी कमर में एक छोटा अधोवस्त्र तथा एक लम्बा उत्तरीय धारण किया हुआ है जो उसके बायें कंधे से गिरता हुआ

उसके पैरों को ढक रहा है। हारीति पूर्णतः वस्त्रों से सज्जित है एवं इसके बायें हाथ में पाश है। हारीति और पांचिक के बीच में ऊपर और नीचे की तरफ एक-एक शिशुओं का अंकन हैं।<sup>12</sup>

#### (5) इण्डियन म्यूजियम कोलकाता- एक वृक्ष के नीचे खड़े हारीति और दाढ़ी युक्त पांचिक

जमालगढ़ी पेशावर से प्राप्त और वर्तमान में भारतीय संग्रहालय कोलकाता में संरक्षित पांचिक और हारीति की यह प्रतिमा(मूर्ति क्रमांक 5) अपनी अद्वितीय यूनानी विशेषताओं की वजह से विश्व विख्यात है। यह युगल एक आंशिक रूप से क्षतिग्रस्त वृक्ष के नीचे खड़ी हुई मुद्रा में उत्कीर्ण है। पांचिक हारीति के दाहिनी ओर खड़ा है, एक बच्चा उसके दाहिने कंधे पर चढ़ रहा है। पांचिक की घनी दाढ़ी एवं घुंघराले घने बाल स्पष्ट रूप से हेलनेस्टिक प्रभाव दर्शाते हैं जिस वजह से वह पांचिक की अपेक्षा रोमन देवता ज्यूपीटर अधिक लग रहा है। हारीति का चेहरा और हाथ खण्डित हो चुके हैं परंतु उसका वस्त्र उसके बायें कंधे से लिपटा हुआ और पूरे शरीर की ढके हुये देखा जा सकता है।<sup>13</sup>

#### (6) इण्डियन म्यूजियम कलकत्ता- वृक्ष के नीचे खड़े हारीति और पांचिक

पाकिस्तान के लोरिपान तांगाई नामक बौद्ध पुरास्थल से प्राप्त यह मूर्ति(मूर्ति क्रमांक-6) वर्तमान में भारतीय संग्रहालय कलकत्ता में संग्रहित है। यह मूर्ति द्वितीय शताब्दी ईस्वी के आस-पास निर्मित की गयी थी। इस मूर्ति में हारीति एवं पांचिक की एक वृक्ष के नीचे खड़ा प्रदर्शित किया गया है। पांचिक का दाहिना हाथ आगे की तरफ बढ़ा हुआ है जैसे वह हारीति को कुछ अर्पित कर रहा हो, जिस परहारीति की दृष्टि टिकी हुई हो। एक शिशु हारीति के पैरों के पास उसकी तरफ बढ़ते हुये प्रदर्शित किया गया है।<sup>14</sup>

गांधार कला में निर्मित हारीति और पांचिक की कुछ संयुक्त प्रतिमाएं ब्रिटिश संग्रहालय लंदन में भी संरक्षित की गई हैं।

#### (7) ब्रिटिश म्यूजियम लंदन- (मूर्ति क्रमांक-7)

गांधार कला का यह मूर्तिफलक वर्तमान में ब्रिटिश म्यूजियम लंदन में संग्रहित है, इसकी माप 19.4x10.2x5.3 से० मी० है। इसमें हारीति एवं पांचिक को एक फूलों वाले वृक्ष के नीचे खड़ा दिखाया गया है जिसे संभवतः जीवन वृक्ष माना गया है। एरिंगटन और क्रिब<sup>15</sup> के अनुसार इस प्रकार की संरचना मिथकीय कथाओं से प्रेरित है। इस मूर्ति में पांचिक की एक उत्तरीप के साथ नग्न रूप में तथा हारीति को पूर्णतः वस्त्रों से आच्छादित अंकित किया गया है। पांचिक का दाहिना हाथ हारीति के बायें हाथ को थामे हुआ प्रतीत होता है।

#### (8) ब्रिटिश म्यूजियम लंदन- सिंहासन पर आसीन हारीति और पांचिक

ब्रिटिश संग्रहालय में संरक्षित प्रथम एवं द्वितीय सदी ई० की यह हारीति और पांचिक की संयुक्त प्रतिमा (मूर्ति क्रमांक-8) कुषाण काल में गांधार कला के शिल्पकारों की उत्कृष्ट कलात्मक क्षमता का प्रदर्शन करती है, इस मूर्ति के निर्माण में यूनानी और ईरानी प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इस मूर्ति में हारीति एवं पांचिक को सिंहासन जैसे आसन पर बैठे हुये उत्तीर्ण किया गया है। दोनों के बीच एक बच्चा है एवं उनके चारों ओर परिचारिकाओं को दर्शाया गया है। इस प्रतिमा में पांचिक ने घेरदार छोटी स्कर्टनुमा धोती पहनी है एवं इसके उपरी भाग में दाएं कंधे पर एक बटन से बंधा हुआ चोंगा है। पांचिक के बाल घुंघराले हैं, उसने कानों में लंबे झुमके पहन रखे हैं।

हारीति ने एक पारदर्शी अंगरखा और कंधे पर लंबा पारदर्शी वस्त्र पहना है जो उसके दायें पर धनुषाकार रूप लेते हुये बाँधा गया है। पांचिक की तरह हारीति ने भी झुमके एवं मोटा हार पहना है तथा इसके घुंघराले बालों को जूड़े की तरह ऊपर बाँधा गया है। हारीति के बायें हाथ में कार्नुकोपिया<sup>16</sup>(निधिश्रृंग) है जो विभिन्न प्रकार के फलों से भरा हुआ है। हारीति का एक हाथ पांचिक की गोद में रखा है तथा दोनों के पैर एक लम्बे रत्नपात्र या खजाने के बर्तन पर टिके हुये हैं। हारीति के पैरों के पास एक शिशु को उसकी तरफ बढ़ते हुये उत्कीर्ण किया गया है। पृष्ठभूमि में एक वृद्ध व्यक्ति धन की थैली लिये हुये प्रदर्शित किया गया है। समय रूप

## 42 हारीति एवं पांचिका की संयुक्त मूर्तियों का प्रतिमा शास्त्रीय अध्ययन : गांधार कला के विशेष सन्दर्भ में

से देखें तो हारीति की वेशभूषा और मुद्रा अत्यंत आकर्षक है। हारीति के घुंघराले बालों के पीछे एक पोलो (सिर में पहना जाने वाला मुकुट) है जो ऊपर की ओर चौड़ा हो जाता है। यह पोलो जहाँ एक और हारीति को देवी ताइके से जोड़ता है, वहीं 'सेरापिस' के नाम से जाना जाने वाला यह पोलो यूनानी देवता हरक्युलिस का प्रतीक है जो इस प्रतिमा के निर्माण में यूनानी प्रभाव स्पष्ट करता है।<sup>17</sup>

### (9) ब्रिटिश म्यूजियम लंदन- मद्यपान करते हारीति और पांचिक

गांधार कला की इस प्रतिमा(मूर्ति क्रमांक-9) में भी हारीति और पांचिक को सिंहासननुमा आसन में बैठे हुये प्रदर्शित किया गया है। यह प्रतिमा आंशिक रूप से क्षतिग्रस्त हो गई है। इस मूर्ति में हारीति और पांचिक गोल प्यालों में मद्यपान करते हुये उत्कीर्ण किये गये हैं। हारीति ने बायें हाथ में किसी फल के समान किसी वस्तु को पकड़ा हुआ है। हारीति आभूषणों से सुसज्जित है तथा उसके बालों को रिबन द्वारा जूड़े में गूँथा गया है। हारीति के सिर के पीछे स्थित प्रभामंडल उसके देवत्व को प्रदर्शित करता है। हारीति एवं पांचिक दोनों के पैर अलग-अलग पादपीठिका में रखे उत्कीर्ण किये गये हैं। दोनों के बीच एक शिशु को खड़े हुये प्रदर्शित किया गया है।<sup>18</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं की गांधार क्षेत्र से प्राप्त हारीति एवं पांचिक की संयुक्त मूर्तियों में कमोवेश एक जैसे प्रतीकात्मक लक्षण दिखाई देते हैं, जैसे- यूनानी प्रकार के वस्त्र, जूते या चप्पल, पांचिक के हाथ में भाला और धन की थैली (जो उनके सेनापति और धन के देवता के दोहरे रूप का संकेत करती है)। हारीति के हाथ में कार्नुकोपिया और बच्चे होते हैं जो यह प्रदर्शित करते हैं कि वह समृद्धि की देवी होने के साथ-साथ एक स्नेहमयी पत्नी और माँ भी हैं।

गांधार कला के साथ-साथ हारीति एवं पांचिक की संयुक्त प्रतिमाएँ मथुरा कला क्षेत्र से भी बड़ी मात्रा में प्राप्त होती हैं। मध्यदेश में पांचिक (कुबेर) को बौद्ध धर्म में जम्भल संज्ञा से अभिहित किया गया है। मथुरा कला क्षेत्र में ब्राह्मण धर्म का प्रभाव अधिक होने की वजह से पांचिक (जम्भल) का स्वरूप स्थूलकाय, अलंकरणों से युक्त एवं राजसी वैभव से परिपूर्ण दिखाई देता है। इसके साथ ही पांचिक की प्रतिमाओं में हेलेनिस्टिक कला के प्रभाव जैसे- दाढ़ी, मूँछे एवं सुगठित शरीर मथुरा कला में लुप्त हो जाते हैं। मथुरा कला में पांचिक को उन्नत उदर के साथ प्रदर्शित किया गया है, जो उसे अधिक परंपरा के अनुरूप बनाता है। मथुरा कला में हारीति और पांचिक की प्रतिमाएँ लाल धब्बेदार बलुये पत्थर से निर्मित की गई है, जबकि गांधार कला में धूसर शिस्ट पत्थर का प्रयोग किया गया है। इन दोनों कला शैलियों में निर्मित हारीति की प्रतिमाओं के मध्य कई महत्वपूर्ण शैलीगत एवं प्रतीकात्मक भिन्नताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। मथुरा कला की हारीति की मूर्तियों में कार्नुकोपिया एवं मदिरापान का लोप हो जाता है एवं इनके स्थान पर बीजपूरक अथवा खट्टे फल को दर्शाया गया है। मथुरा कला में हारीति की गांधार कला की तुलना में अधिक कामुक, सजीव एवं मांसल स्वरूप में निर्मित की गई है। साथ ही मथुरा कला में हारीति को नंगे पैर प्रदर्शित किया गया है। हारीति के आभूषणों में अपेक्षाकृत कम परिवर्तन हुआ है। मथुरा कला ने भी हारीति को भारी एवं समृद्ध आभूषणों से अलंकृत रूप में प्रस्तुत किया गया है। गांधार कला में हारीति के प्रमुख लक्षणों में कार्नुकोपिया, मदिरापान, कमल पुष्प, लता, धन की थैली बालक एवं वृक्ष सम्मिलित है, जबकि मथुरा कला में कार्नुकोपिया जैसे कुछ लक्षण लुप्त हो जाते हैं तथा शिशुओं के अंकन को अधिक प्रमुखता प्राप्त होती है। उपरोक्त प्रतिमाओं के विश्लेषण से हम निष्कर्षतः कह सकते हैं कि गांधार कला में यूनानी-रोमन और मिस्त्री संस्कृतियों का समन्वय स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, लेकिन मथुरा कला में हारीति को अधिक स्वदेशी (देशीय) रूप में प्रस्तुत किया गया है।

चित्र सूची



मूर्ति क्रमांक - 1



मूर्ति क्रमांक -2



मूर्ति क्रमांक-3



मूर्ति क्रमांक-4



मूर्ति क्रमांक 5



मूर्ति क्रमांक 5



मूर्ति क्रमांक -6



मूर्ति क्रमांक-7

44 हारीति एवं पांचिका की संयुक्त मूर्तियों का प्रतिमा शास्त्रीय अध्ययन : गांधार कला के विशेष सन्दर्भ में



मूर्ति क्रमांक-8

संदर्भ सूची

1. अग्रवाल, वासुदेवशरण; प्राचीन भारतीय लोकधर्म, जानोदय ट्रस्ट, अहमदाबाद, 1964, प्र०119
2. वही, प्र. 120
3. कुमारस्वामी, ए०के०, यक्षाज भाग 2, वाशिंगटन डी.सी. 1931, प्र.8
4. महावंश 12/21
5. कुमारस्वामी, ए. के., यक्षाज भाग 2, वाशिंगटन डी.सी., 1931, प्र.5
6. सी.यू.की. बुद्धिस्ट रिकार्ड आफ वेस्टर्न वर्ल्ड, अनुवाद सैम्युल बील, वाल्यूम 1, ट्रयूब्लर एण्ड कम्पनी लंदन 1884, प्र.216
7. इत्सिंग- ए रिकार्ड आफ बुद्धिस्ट रिलीजन, अनुवाद तक्कुसु, मुंशीराम मनोहरलाल, 1982, प्र. 38
8. अग्रवाल, वासुदेवशरण; भारतीयकला, पृथ्वी प्रकाशन वाराणसी 2015 (पुनर्मुद्रित संस्करण), प्र. 287
9. इंगहोल्ड, हेराल्ड, गांधार आर्ट इन पाकिस्तान, पैथियन बुक, 1957, प्र. 147, फलक 342.
10. वही, प्र. 148, फलक 344
11. माहेश्वरी, मधुरिका के; फ्राम आग्रेस टू गाडेस हारीति ए बुद्धिस्ट देइती, आई आई आर एन एस पब्लिकेशन लिमिटेड, 2009, प्र. 136
12. वही, प्र. 138
13. वही, प्र. 141
14. वही, प्र. 141
15. ए. एरिंगटन एवं जो. क्रिब, 1992, प्र. 133
16. कार्नुकोपिया एक सींगनुमा पात्र है। यूनान में कार्नुकोपिया को उर्वरता का प्रतीक माना जाता था तथा इसे देवी देवी ताइके से सम्बन्धित किया जाता था, जबकि रोमन सिक्कों में कार्नुकोपिया को देवी फार्चूना के साथ उत्कीर्ण किया जाता था। कुषाण काल में इसे ईरानी उर्वरता की देवी आदोक्को से भी जोड़ दिया गया। गांधार कला में इसी कार्नुकोपिया को देवी हारीति से भी सम्बन्धित कर दिया गया।
17. माहेश्वरी, मधुरिका के., फ्राम आग्रेस टू गाडेस हारीति ए बुद्धिस्ट देइती, IIRNS पब्लिकेशन लिमिटेड 2009, प्र.136
18. वही, प्र.145

## चेचक टीकाकरण की जैव राजनीति : वेरियलेशन से वैक्सीनेशन तक

विजय प्रकाश सिंह\*

### सार

यह लेख फूको के बायोपावर के सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य से उत्तर भारत में चेचक टीकाकरण के इतिहास का विश्लेषण करता है। 1857 की क्रांति के बाद ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन ने अपना ध्यान क्षेत्रीय विजय से हटाकर स्थानीय आबादी के प्रबंधन पर केंद्रित कर दिया था। टीकाकरण न केवल एक सार्वजनिक स्वास्थ्य आवश्यकता के रूप में उभरा, बल्कि राज्य की निगरानी और औपनिवेशिक शक्ति के विस्तार के लिए एक महत्वपूर्ण अंग भी बन गया। स्वदेशी टीकाकरण से पश्चिमी टीकाकरण की ओर संक्रमण, जनसांख्यिकीय निगरानी प्रणालियों की स्थापना और अनिवार्य टीकाकरण कानूनों के कार्यान्वयन का विश्लेषण करते हुए, यह लेख तर्क देता है कि औपनिवेशिक चिकित्सा तंत्र ने भारतीय देशी शरीर का निगरानी और नियंत्रण करने के एक उपकरण के रूप में भी कार्य किया। औपनिवेशिक भारत में टीकाकरण अभियान पश्चिमी चिकित्सा और राज्य सत्ता के सुदृढ़ीकरण के जटिल अंतर्संबंध को उजागर करते हैं। यह तर्क देता है कि जेनेरियन टीकाकरण एक चिकित्सीय हस्तक्षेप के साथ शासन की राजनीतिक तकनीक के रूप में भी कार्य करता है।

**मुख्य शब्द:** जैव राजनीति, औपनिवेशिक चिकित्सा, चेचक, टीकाकरण, निगरानी, सार्वजनिक स्वास्थ्य

### परिचय

औपनिवेशिक भारत में पश्चिमी चिकित्सा के विकास को न केवल वैज्ञानिक प्रगति के इतिहास के रूप में बल्कि औपनिवेशिक उदयम के एक अभिन्न अंग के रूप में भी देखा जा सकता है। 19वीं शताब्दी में, विशेष रूप से 1857 की क्रांति के बाद, ब्रिटिश औपनिवेशिक राज्य ने शासन के तरीके में कई मौलिक परिवर्तन किए। ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारिक प्रशासन से प्रत्यक्ष शाही शासन में परिवर्तन ने नियंत्रण के नए-नए तंत्र की आवश्यकता भी पैदा कर दी थी। अब शासन चलने के लिए केवल राजस्व उगाहना और सैन्य प्रभुत्व बनाए रखना नहीं था बल्कि सत्ता की स्थिरता बनाए रखने के लिए भारतीय आबादी के जीवन, स्वास्थ्य और उत्पादकता के सक्रिय प्रबंधन की आवश्यकता थी।<sup>1</sup>

औपनिवेशिक शासन प्रणाली में यह बदलाव फ्रांसीसी दार्शनिक मिशेल फुको द्वारा प्रतिपादित बायोपॉलिटिक्स सिद्धांत से मेल खाता है, जिसमें वह तर्क देते हैं राज्य सार्वजनिक स्वास्थ्य, स्वच्छता और शारीरिक नियमन के माध्यम से जनसंख्या को नियंत्रित करने के लिए शक्ति का उपयोग करता है।<sup>2</sup> वह बताते हैं कि आधुनिक राज्य प्रशासन बायोपावर पर निर्भर करता है जो शरीर को अधीन बनाकर और जनसंख्या को नियंत्रित करने के लिए अनेक तकनीकों का खोज और उपयोग करता है। औपनिवेशिक भारत के संदर्भ में, डेविड अर्नाल्ड का तर्क है पश्चिमी चिकित्सा देशी शरीर को नियंत्रित करके उसे राज्य के अधीन बनाने का एक अनिवार्य साधन बन गई थी।<sup>3</sup>

1858 में सत्ता हस्तांतरण के बाद अंग्रेजी शासको ने तेजी से रोग नियंत्रण को शासन स्थिरता के लिए आवश्यक माना। डेविड अर्नाल्ड बताते हैं सार्वजनिक स्वास्थ्य राजकोषीय अनुशासन, सैन्य नीति और राजनीतिक व्यवस्था के साथ जुड़ा हुआ था।

\* शोध छात्र, इतिहास विभाग, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर (म. प्र.)  
vijayprakashsingh585@gmail.com

18वीं और 19वीं शताब्दी में चेचक महामारी ने भारतीय समाज को अस्त व्यस्त कर दिया था। इससे सबसे ज्यादा प्रभावित कम उम्र के बच्चे थे जिसकी प्रतिरक्षा वयस्कों की तुलना में कमजोर होती है। इस महामारी ने राज्य में कृषि अर्थव्यवस्था को गहराई से पर प्रभावित किया। जिससे यह शासन के लिए एक समस्या बन गई थी। हैजा या प्लेग जैसी महामारी रोगों के विपरीत, जो छिटपुट लहरों में फैलती थी, चेचक स्थानिक बीमारी थी, जो उपमहाद्वीप के सामाजिक, धार्मिक और पारिस्थितिक ताने-बाने में गहराई से जुड़ी हुई थी।<sup>4</sup>

इस महामारी के उन्मूलन के लिए अंग्रेजी सरकार ने व्यापक स्तर पर टीकाकरण अभियान की शुरुआत की। इसके माध्यम से राज्य ने भारतीय निकायों को वर्गीकृत करके अनुशासित (नियंत्रित) करने पर जोर दिया। टीकाकरण रजिस्टर, सांख्यिकी दस्तावेजीकरण और नगरपालिका कानून एक विस्तारित निगरानी तंत्र के हिस्सा थे। हालांकि सभी स्थानों पर जैवशक्ति ना तो सामान थी और ना ही निर्विरोध। स्थानीय लोगों ने प्रतिरोध, समायोजन और पुनर्व्याख्या के माध्यम से प्रतिक्रिया दी।

औपनिवेशिक भारत में पश्चिमी टीकाकरण की शुरुआत से पहले चेचक को वेरियोलेशन की प्राचीन पद्धति के माध्यम से उपचार किया जाता था जिसे टिकादरी या टीका कहा जाता था। इस पद्धति में वैक्सीनेशन के विपरीत जिंदा चेचक द्रव्य द्वारा टीका दिया जाता था।<sup>5</sup> “वेरियोलेशन पद्धति के बारे में हॉलवेल लिखते हैं वेरिओलेटर्स टीका देने वाला ब्राह्मणों का एक विशेष कबीला था जो हर साल उत्तर भारत में से बंगाल में जनवरी या फरवरी में आता था क्योंकि यह चेचक फैलने का मौसम था। यह लोग प्रायः रोगियों की बांह पर टीका देते थे। पहले वह चुने हुए हिस्से को कपड़े से कुछ मिनट तक रगड़ते थे फिर धातु के छोटे औजार से उस हिस्से में छेद करते थे और वेरियलस द्रव्य में रूई के गद्दे को सरोबार कर बांह पर पट्टी बांध देते थे। यह वेरियलस द्रव्य पिछले साल के इनांक्यूलेशंस से उत्पन्न पस्ट्युलस (फुंसी या छाले) से लिया जाता था..... पुराना पर जाने के कारण दुर्बल हो गया विषाणुज द्रव्य का उपयोग रोग के दोबारा आक्रमण को भयावह होने से बचता था और रोग निरोगत क्षमता भी पैदा करता था..... वेरियोलेशन से उत्पन्न चेचक मंद होता है, फुंसियों की संख्या कम होती है और रोग के महामारी का रूप लेने अथवा टीका लेने वाले व्यक्तियों के मौत की संभावना क्षीण होती है”<sup>6</sup>

यह एक स्थानीय विकेंद्रीकृत चिकित्सा प्रणाली थी जो पूरी तरीके से औपनिवेशिक राज्य के दायरे एवं विनियमन के बाहर देसी चिकित्सकों द्वारा नियंत्रित थी।<sup>7</sup> चेचक को भारतीय समाज में शीतला माता से भी जोड़ा जाता था। यह प्रथा धार्मिक आस्था के साथ गहराई से जुड़ा हुआ था। शीतला माता की पूजा और चढ़ावों के द्वारा इसे ठीक करने का प्रयास किया जाता था।<sup>8</sup> टीकदार न केवल चिकित्सक के रूप में थे बल्कि एक अनुष्ठान विशेषज्ञ के रूप में भी जाने जाते थे जो देवी के दिव्य क्रोध और आशीर्वाद का संचालन करते थे। वेरियोलेशन के परिणामस्वरूप स्थानीय समुदाय द्वारा प्रतिबंधित घटनाएं, जो आहार संबंधी प्रतिबंध, अलगाव और विशिष्ट प्रार्थना शामिल थीं।<sup>9</sup>

शुरुआत में इस पद्धति को अंग्रेजों ने सहानुभूति और लोकप्रिय भारतीय अभ्यास पर प्रशंसा के साथ देखा लेकिन टीकाकरण के आगमन के साथ वे तेजी से शत्रुतापूर्ण रवैया अपनाने लगे एवं इसे एक जानलेवा व्यापार के रूप में वर्णित किया।<sup>10</sup> औपनिवेशिक चिकित्सा अधिकारी अक्सर इन प्रणालियों को अंधविश्वास और अवैज्ञानिक कहकर खारिज कर देते थे। 1798 में जेनर ने रोग विरोधी प्रभाव वाले काउपॉक्स वाले टीका की खोज की और 1802 में इसे भारत लाया गया।<sup>11</sup> 1850 के दशक तक औपनिवेशिक राज्य ने उत्तर भारत के ग्रामीण इलाकों में टीकाकरण को आगे बढ़ाने के लिए एक ठोस प्रयास शुरुआत किया।<sup>12</sup> राज्य द्वारा टीकाकरण को बढ़ावा देने के साथ वेरियोलेशन को अवैध घोषित कर खत्म करने के लिए एक व्यवस्थित अभियान चलाया गया। ब्रिटिश स्वच्छता आयुक्त नियमित रूप से आधिकारिक रिपोर्ट में ठेकेदारों को अज्ञानी, अंधविश्वासी और

जानलेवा ठेकेदार के रूप में वर्णित करते थे। देशी चिकित्सा ज्ञान को खतरनाक अंधविश्वास के रूप में वर्गीकृत करके ब्रिटिश प्रशासन ने खुद को सार्वजनिक स्वास्थ्य के एकमात्र तर्कसंगत संरक्षक के रूप में स्थापित किया।

औपनिवेशिक शासन ने देशी समाजों के लिए 1880 में टीकाकरण को अनिवार्य कर दिया। लोगों के जैविक जीवन को नियंत्रित करने के लिए ब्रिटिश प्रशासन को जन्म दर, मृत्यु दर और रोगों के स्थानिक वितरण के बारे में सटीक मात्रात्मक डाटा की आवश्यकता थी और इसकी शुरुआत के लिए बड़े पैमाने पर नौकरशाही तंत्र की आवश्यकता थी। नतीजतन टीकाकरण अभियान जनगणना लेने और पंजीकरण की औपनिवेशिक परियोजना से जुड़ गई।<sup>13</sup> टीकाकारों द्वारा प्रत्येक बच्चे का नाम, जाति, लिंग, आयु और माता-पिता के नाम को सावधानी पूर्वक दर्ज करना आवश्यक था। इस रजिस्टर ने अराजक (विद्रोही) गांव की आबादी को नियंत्रित डाटा बिंदुओं के साथ बदल दिया। इस व्यवस्था ने पुलिस के निगरानियों और राज्य की अनुशासनात्मक कार्यवाही को सीधे ग्रामीण इलाकों में और मजबूती से स्थापित किया।<sup>14</sup> उच्च मृत्यु दर वाले गांव को अज्ञानी के रूप में चित्रित किया गया। इसे कोहन ने औपनिवेशिक ज्ञान की गणनात्मक पद्धति के रूप में वर्णित किया है। ठंडे महीनों के दौरान ब्रिटिश चिकित्सा अधिकारियों ने स्थानीय अधीनस्थों के काम का निरीक्षण करने के लिए ग्रामीण जिलों के माध्यम से सवारी करते हुए व्यापक टीकाकरण दौरे किए। ग्रामीणों को अक्सर अपने शिशुओं को केंद्रीय स्थान पर इकट्ठा करने का आदेश दिया जाता था ताकि ब्रिटिश अधिकारी निशान के लिए उनकी बाहों में लगे टीका निरीक्षण कर सकें।<sup>15</sup>

गांव में इस स्थानिक प्रवेश ने भारतीय घरेलू क्षेत्र की पारंपरिक सीमाओं को बलपूर्वक तोड़ दिया। ब्रिटिश राज्य केवल राजस्व कर की मांग नहीं कर रहा था बल्कि भौतिक निकायों की निरीक्षण और निगरानी करने के लिए अधिकार का दावा कर रहा था।

निष्कर्ष

1857 के बाद उत्तर भारत में चेचक टीकाकरण ने औपनिवेशिक शासन के एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में कार्य किया। इसने फूको की जैव-राजनीतिक शक्ति सिद्धांत के उद्भव का उदाहरण दिया-जो जीवन के प्रबंधन, मृत्यु दर को कम करने और आबादी को विनियमित करने से संबंधित है।

निगरानी, कानून और नौकरशाही विस्तार के माध्यम से, औपनिवेशिक राज्य ने महामारी नियंत्रण को प्रशासनिक प्राधिकरण के क्षेत्र में बदलने का कार्य किया। टीकाकरण कभी भी विशुद्ध रूप से केवल एक चिकित्सा हस्तक्षेप नहीं था बल्कि यह नस्लीय मान्यताओं, अवसंरचनात्मक सीमाओं और स्वदेशी प्रतिरोध द्वारा आकार दिया गया था।

#### संदर्भ सूची:

1. Nicholas, R. W. (1981). The Goddess Sitala and Epidemic Smallpox in Bengal. *The Journal of Asian Studies*, 41(1), 21–44.
2. Foucault, M. (1978). *The History of Sexuality, Vol. 1: An Introduction*. Translated by Robert Hurley. New York: Pantheon Books. Pp. 135–159.
3. Arnold, D. (1993). *Colonizing the Body: State Medicine and Epidemic Disease in Nineteenth-Century India*. Berkeley: University of California Press. Pp. 116–158.
4. वहीं, पृष्ठ. 116
5. आर्नोल्ड, डी. (2019). औपनिवेशिक भारत में विज्ञान, प्रौद्योगिकी और आयुर्विज्ञान (शैलेन्द्र, अनु.). वाणी प्रकाशन. (मूल कार्य 2000 में प्रकाशित). पृष्ठ 98
6. वहीं, पृष्ठ. 99
7. Brimnes, N. (2004). Variolation, Vaccination and Popular Resistance in Early Colonial South India. *Medical History*, 48(2), 199–228.

8. Nicholas, R. W. (1981). The Goddess Sitala and Epidemic Smallpox in Bengal. *The Journal of Asian Studies*, 41(1), 21–44.
9. Marglin, F. A. (1990). Smallpox in Two Systems of Knowledge. In F. A. Marglin & S. A. Marglin (Eds.), *Dominating Knowledge: Development, Culture, and Resistance* Oxford: Clarendon Press. Pp. 102–144.
10. Brimnes, N. (2004). Variolation, vaccination and popular resistance in early colonial south India. *Medical History*, 48(2), 199–228. <https://doi.org/10.1017/s0025727300000107>
11. आर्नोल्ड, डी. (2019). औपनिवेशिक भारत में विज्ञान, प्रौद्योगिकी और आयुर्विज्ञान (शैलेन्द्र, अनु.). वाणी प्रकाशन. (मूल कार्य 2000 में प्रकाशित). पृष्ठ 101
12. Harrison, M. (1994). *Public Health in British India: Anglo-Indian Preventive Medicine 1859–1914*. Cambridge: Cambridge University Press. pp. 60–98.
13. वहीं पृष्ठ .89
14. Foucault, M. (1978). *The History of Sexuality, Vol. 1: An Introduction*. Translated by Robert Hurley. New York: Pantheon Books. pp. 135–159.
15. Brimnes, N. (2004). Variolation, Vaccination and Popular Resistance in Early Colonial South India. *Medical History*, 48(2), 199–228.



## प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के शैक्षिक रुचि तथा समायोजन पर प्रभाव का अध्ययन

डॉ. सुरेन्द्र यादव\*

### सारांश :

“आज समाज में विभिन्न प्रकार के विद्यालयों की स्थापना हो रही है जिनकी अपनी शिक्षण व्यवस्था है और अपने निश्चित मापदण्ड हैं उनके बीच रहकर विद्यार्थी यह नहीं समझ पाता है कि वह किस माध्यम (हिन्दी/अंग्रेजी) के विद्यालयों में प्रवेश लें जिससे उसे अच्छी शिक्षा मिल सके व उनका उपलब्धि स्तर भी अच्छा रहे भाषा या माध्यम का चयन विद्यार्थी की व्यक्ति पसन्द या नापसन्द पर आधारित होना चाहिये क्योंकि यदि शिक्षार्थी को ये अधिकार प्राप्त होगा तभी वह अपने आपको उस परिस्थिति में समायोजित कर पायेगा और उसका शैक्षिक रुचि में लगाव भी ठीक रहेगा। परिणामतः बालक की उपलब्धि महत्तम और कार्य सम्पादन क्षमता भी बढ़ जाती है।”

### प्रस्तावना :

शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास उसके ज्ञान एवं कला-कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है और यह कार्य मनुष्य के जन्म से ही प्रारम्भ हो जाता है।

प्रत्येक मनुष्य को उसके मनोविज्ञान (शिशु, बाल, किशोर तथा युवा) के आधार पर शिक्षा प्रदान की जाती है। जिसके लिये शिक्षा को उनके मनोविज्ञान के आधार पर विभिन्न स्तरों पूर्व प्राथमिक (शिशु), प्राथमिक (बाल), माध्यमिक (किशोर) और उच्च (युवा) में विभाजित किया गया है और सब स्तरों की शिक्षा के अलग-अलग उद्देश्य एवं पाठ्यक्रम निश्चित किये गये हैं।

प्राथमिक शिक्षा का सामान्य अर्थ है— कि प्रारम्भिक/मुख्य शिक्षा। इस प्रकार प्राथमिक शिक्षा का अर्थ हुआ प्रारम्भिक शिक्षा, मुख्य शिक्षा। प्रारम्भिक शिक्षा इसलिये कि यह बच्चों को प्रारम्भ में दी जाती है और मुख्य शिक्षा इसलिये कि यह आगे की शिक्षा की नींव होती है। शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर विद्यार्थियों की क्रियायें उनकी शिक्षा प्रक्रिया के माध्यम व उनकी शैक्षिक रुचि पर निर्भर करती है। अतः बालकों की मानसिक शक्ति का सर्वोत्तम विकास करने के लिये शिक्षा का स्वरूप उनकी रुचियों, दृष्टिकोणों व योग्यताओं के अनुरूप होना चाहिये ताकि वह अपने को अच्छे से समायोजित भी रहे।

वैश्वीकरण के इस युग में संतुलित व्यक्तियों का निर्माण करना एवं प्रगति की आवश्यकताओं के अनुकूल उन्हें श्रेष्ठतम बनाने की महती आवश्यकता है। आज समाज में विभिन्न प्रकार के विद्यालयों की स्थापना हो रही है जिनकी अपनी शिक्षण व्यवस्था है और अपने निश्चित मापदण्ड हैं। उनके बीच रहकर विद्यार्थी यह नहीं समझ पाता है कि वह किस माध्यम के विद्यालयों में प्रवेश लें जिससे उसे अच्छी शिक्षा मिल सके व उनका उपलब्धि स्तर भी अच्छा रहे। भाषा या माध्यम का चयन विद्यार्थी की व्यक्तिगत पसन्द या नापसन्द पर आधारित होना चाहिये क्योंकि यदि विद्यार्थी को ये अधिकार प्राप्त होगा तभी वह अपने आपको वास्तविक परिस्थिति में समायोजित कर पायेगा।

उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुये शोधकर्ता ने प्राथमिक स्तर पर शिक्षा को उपयोगी बनाने के लिये शिक्षा के माध्यम का शैक्षिक रुचि व समायोजन पर प्रभाव का अध्ययन विषय पर कार्य करने की आवश्यकता महसूस की।

### समस्या कथन :

“प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के शैक्षिक रुचि तथा समायोजन पर प्रभाव का अध्ययन”।

\* असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एम0एड0 विभाग), दयानन्द वैदिक कॉलेज उरई (जालौन)  
Email : ssydvmed@gmail.com

**शोध अध्ययन के उद्देश्य :**

1. हिन्दी माध्यम व अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की शैक्षिक रुचि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. हिन्दी माध्यम व अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के समायोजन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना।

**शोध अध्ययन की परिकल्पना :**

शोधकर्ता द्वारा निम्नलिखित शून्य परिकल्पना बनायी गयी।

1. हिन्दी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की शैक्षिक रुचि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. हिन्दी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के समायोजन स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

**अध्ययन की शोध विधि :**

प्रस्तुत अध्ययन में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। सर्वेक्षण विधि का सम्बन्ध उन स्थितियों से है जिसका अस्तित्व वर्तमान में है, उन व्यवहारों से है जो प्रचलित है व उन दृष्टिकोणों से है जिनका प्रचलन है तथा उन प्रभावों से जिन्हें अनुभव किया जा रहा है।

**प्रतिदर्श एवं प्रतिदर्शन तकनीक :**

प्रस्तुत शोध में जनपद हमीरपुर के पांच प्राथमिक विद्यालयों का चयन किया गया जिनमें हिन्दी व अंग्रेजी माध्यम की कक्षाएं संचालित थी। इस अध्ययन में प्रत्येक माध्यम के कक्षा 5 में अध्ययनरत 10 विद्यार्थियों को लाटरी विधि द्वारा यादृच्छिक चयनित किया गया।

**प्रतिदर्श वितरण :**

क्र०सं०	विद्यालय	हिन्दी माध्यम के विद्यार्थी		अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थी	
		छात्र	छात्रायें	छात्र	छात्रायें
1.	सरस्वती शिशु मन्दिर	5	5	5	5
2.	सर्वोदय बाल विद्या मन्दिर	5	5	5	5
3.	सरस्वती शिक्षा मन्दिर	5	5	5	5
4.	दयानन्द पब्लिक स्कूल	5	5	5	5
5.	ग्रीन वैली पब्लिक स्कूल	5	5	5	5
	योग—	25	25	25	25

कुल योग— 100

**उपकरण :**

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधकर्ता ने निम्न शोध उपकरणों का चयन किया।

1. शैक्षिक रुचि प्रपत्र
2. समायोजन अनुसूची

**शैक्षिक रुचि प्रपत्र :**

वर्तमान शैक्षिक रुचि प्रपत्र 'एस०पी० कुलश्रेष्ठ' द्वारा निर्मित है। इस रुचि प्रपत्र को सात विषय क्षेत्रों में विभाजित किया गया है।

**समायोजन अनुसूची :**

इस अनुसूची का निर्माण "R.P. Singh" द्वारा किया गया है। इसमें कुल 60 पद हैं जिनमें समायोजन के तीन क्षेत्रों भावात्मक, सामाजिक व शैक्षिक का वर्णन किया गया है।

**प्रयुक्त सांख्यिकीय विधियाँ :**

प्रस्तुत शोध में सांख्यिकीय विश्लेषण के लिये मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि एवं 'टी' परीक्षण का प्रयोग किया गया।

शोध परिकल्पना परीक्षण एवं निष्कर्ष :

प्रथम शून्य परिकल्पना का परीक्षण :

“हिन्दी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की शैक्षिक रुचि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।”

सारणी-1

	n प्रतिदर्श	m मध्यमान	S.D. मानक विचलन	D मध्यमानों में अन्तर	$\sigma D$ मानक त्रुटि	t- मान	सार्थक स्तर	सारणी मान
हिन्दी माध्यम के विद्यार्थी	50	40.60	5.20	3.92	.961	4.07	0.05	1.96
अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थी	50	36.68	4.39				0.01	2.58

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि हिन्दी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों के कुल विद्यार्थियों के शैक्षिक रुचि सम्बन्धी मध्यमान क्रमशः 40.60 व 36.68 है। यहां  $E_m$  व  $H_m$  के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों के मध्यमानों के बीच अन्तर 3.92 है। अन्तर की सार्थकता की जांच करने के लिये सारणी मान से t-मान की तुलना की गयी जिसमें यह पाया गया कि हिन्दी व अंग्रेजी के विद्यार्थियों का t-मूल्य सारणी मान से अधिक है। अतः दोनों स्तरों (0.01 तथा 0.05) पर शून्य परिकल्पना निरस्त हुई व शोध परिकल्पना स्वीकृत है। अतः हिन्दी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की शैक्षिक रुचि में सार्थक अन्तर है।

द्वितीय शून्य परिकल्पना का परीक्षण :

“हिन्दी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के समायोजन स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।”

सारणी-2

	n प्रतिदर्श	m मध्यमान	S.D. मानक विचलन	D मध्यमानों में अन्तर	$\sigma D$ मानक त्रुटि	t- मान	सार्थक स्तर	सारणी मान
हिन्दी माध्यम के विद्यार्थी	50	14.88	4.540	5	0.79	3.	0.05	1.96
अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थी	50	19.88	3.350			44	0.01	2.58

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि हिन्दी व अंग्रेजी माध्यम के कुल विद्यार्थियों के समायोजन स्तर सम्बन्धी मध्यमान क्रमशः 14.88 व 19.88 है तथा विद्यार्थियों के प्राप्तांकों के मध्यमानों के बीच अन्तर 6.24 है। अन्तर की सार्थकता की जांच करने के लिये सारणी मान से ‘टी’ मूल्य की तुलना की गयी जिसमें यह पाया गया कि हिन्दी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों का t-मान सारणी मान से अधिक है। अतः 0.05 व 0.01 दोनों स्तरों पर शून्य परिकल्पना अस्वीकृत हुई जबकि शोध परिकल्पना स्वीकृत। अन्ततः परिणाम के तौर पर हम कह सकते हैं कि प्राथमिक स्तर पर हिन्दी व अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों के समायोजन स्तर में सार्थक अन्तर है।

समायोजन के सन्दर्भ में स्पष्ट है कि उचित माध्यम व पसन्दीदा विषयों के चयन करने पर विद्यार्थियों का समायोजन स्तर उच्च होता है। बजाय इसके कि कोई भी माध्यम या कोई भी विषय का चयन किया जाये।

इस प्रकार स्पष्ट है कि हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों की शैक्षिक रुचि व समायोजन स्तर अंग्रेजी माध्यम के अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों की अपेक्षा उच्च पाया गया।

रुचि अधिक है  $\Rightarrow$  समायोजन अधिक है।

**शैक्षिक निहितार्थ :**

प्रस्तुत शोध अध्ययन के शैक्षिक निहितार्थ निम्न है—

1. प्रस्तुत शोध कार्य शिक्षक के द्वारा विद्यार्थियों को निर्देशन देने में सहायक सिद्ध हो सकता है।
2. प्रस्तुत अध्ययन अभिभावकों को अपने बच्चों को निर्देशन देने की दिशा में अन्तर दृष्टि दे सकता है।
3. प्रस्तुत अध्ययन के द्वारा उचित माध्यम का चयन करके विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को उच्च किया जा सकता है।
4. शिक्षाविदों को पाठ्यक्रम निर्धारण, शिक्षणविधियों तथा विद्यालयी वातावरण के सुधार में प्रस्तुत अध्ययन सहायता प्रदान कर सकता है।

5. इस शोध कार्य अध्ययन के द्वारा छात्र-छात्राओं में सकारात्मक व्यवहार विकसित करके शैक्षिक उपलब्धि को और भी विकसित किया जा सकता है।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. बुच, एम0बी0 (1972-78) : सेकेन्ड सर्वे आफ रिसर्च इन एजूकेशन, सोसाइटी फार रिसर्च, डेवलपमेन्ट, बड़ौदा
2. भटनागर, सुरेश (1998) : शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठ, आर0लाल0 बुक डिपो।
3. बुच0एम0बी0 (1983-88) : फार्थ सर्वे आफ रिसर्च इन एजूकेशन, एन0सी0ई0आर0टी0, नई दिल्ली
4. गैरेट, हेनरी ई0 तथा आर0एस0 बुडवर्थ : शिक्षा मनोविज्ञान में सांख्यिकीय, कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली
5. कपिल, एच0के0 (2004) : अनुसंधान विधियां, भार्गव भवन, आगरा
6. पाण्डेय, के0पी0 (2005) : शैक्षिक अनुसंधान, वाराणसी, विश्वविद्यालय, प्रकाशन
7. शर्मा, आर0ए0 (2005) : शिक्षा अनुसंधान, मेरठ, सूर्या पब्लिकेशन्स
8. सिंह, ए0के0 : उच्चतर सामान्य, मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, पटना, 2006
- 9- सुखिया, एस0पी0 (1955) : शिक्षा अनुसंधान के मूल तत्व, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर
- 10- [www.eric.gov.in](http://www.eric.gov.in)



## संगीत शिक्षा एवं उसका बदलता स्वरूप : एक विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण

डॉ. रोली कनौजिया\*

### सारांश :-

आज हमारे देश में संगीत शिक्षा का जो स्वरूप दृष्टिगत होता है वह प्राचीन तथा मध्यकाल की संगीत शिक्षा प्रणाली से सर्वथा भिन्न है। उस समय की संगीत शिक्षण व्यवस्था का एक इतिहास रहा है, जिसमें गुरु के सम्मुख बैठ कर सीना-ब-सीना तालीम दी जाती थी। चाहे वह गुरुकुल हो या घराना पद्धति संगीत एक ऐसा विषय है जिसमें समूह में संगीत सीखना अथवा सिखाना इसकी प्रकृति के अनुकूल नहीं है क्योंकि इसमें व्यक्ति विशेष की त्रुटियों का तत्काल संशोधन करना होता है। यह एक साधना तथा अभ्यास का विषय है, किन्तु पूर्व काल में संगीत केवल कुछ लोगों के एकाधिकार तक सीमित था। वे अपने निजी स्वार्थ से किसी बाहरी व्यक्ति को अपनी कला नहीं सिखाते थे। राजा महाराजाओं के समय में संगीतज्ञों को राज्याश्रय प्राप्त था तथा बाद में घराने बने किन्तु जब अंग्रेजी शासन काल आया तो संगीत की स्थिति और खराब होती चली गई। सभ्य घर के लोग इससे दूरी बनाने लगे ऐसे समय में पं० विष्णु नारायण भातखंडे, पं० विष्णु दिगम्बर पलुष्कर ने संगीत के पुनर्स्थान का बीड़ा उठाया। उनके अथक प्रयासों से संगीत को शिक्षण संस्थाओं में एक विषय के रूप में मान्यता मिली। अब संगीत के द्वार सर्वसाधारण के लिये खुल गये हैं तथा संचार माध्यमों में क्रान्ति के फलस्वरूप लोग संगीत शिक्षा के प्रति सजग हो गये हैं। आज शिक्षण संस्थाओं से उम्मीद की जाती है कि वहाँ से निकले विद्यार्थी कलाकार तथा मंच प्रदर्शक बने किन्तु संगीत एक ऐसा विषय है जो समय, साधना, अभ्यास तथा समर्पण माँगता है। फिर भी इन शिक्षण संस्थाओं में प्रशिक्षण के माध्यम से विद्यार्थियों के लिये रोजगार के अन्य अनेक मार्ग खुलते हैं तथा खुल सकते हैं। कुछ कमियाँ अवश्य हैं किन्तु उनमें सुधार करने से परिस्थितियों में बड़े पैमाने पर सुधार होगा, ऐसी मेरी आशा ही नहीं वरन् पूर्ण विश्वास है।

**मुख्य शब्द :-** संगीत, शिक्षा, कलाकार, घराना, गुरु शिष्य परम्परा

शिक्षा का अर्थ मात्र जानकारी लेना नहीं है वरन् सीखने की सतत प्रक्रिया है। शिक्षा से व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है, वह उसमें निर्णय लेने की क्षमता विकसित करती है तथा उसके स्वतन्त्र चिंतन को बढ़ावा देती है जहाँ तक संगीत शिक्षा का प्रश्न है इसमें संगीत के प्रयोगात्मक तथा शास्त्र पक्ष दोनों का अध्ययन किया जाता है। चूंकि यह एक क्रियात्मक विषय है अतः इसके प्रयोगात्मक पक्ष की उपयोगिता अधिक है।

“संगीत शिक्षा या सीखने का अर्थ— स्वर, लय और ताल का ज्ञान, स्वरों की बारीकियाँ व रागदारी रागों का विस्तृत ज्ञान, संगीत की सूक्ष्मता व वैचित्र्य का ज्ञान। ये ऐसी मूल बातें हैं, जिनका ज्ञान होने पर ही सच्चे अर्थों में संगीत सीखना कहा जा सकता है।”<sup>1</sup>

किन्तु आज जो संगीत शिक्षण प्रणाली है वह मध्यकाल तथा प्राचीन काल से सर्वथा भिन्न है। वैदिक काल से मध्य काल तक संगीत की शिक्षा गुरु शिष्य परम्परा पर आधारित रही है, जिसमें गुरु के सम्मुख बैठ कर शिक्षा ग्रहण की जाती थी। अत्यन्त कठिनाई से गुरु कृपा प्राप्त होती थी। उस समय तक स्वर लिपि पद्धति का भी अविष्कार नहीं हुआ था और न ही ध्वनि अंकित करने हेतु कोई वैज्ञानिक तकनीक थी। सभी कुछ मौखिक रूप से कंठस्थ रखना पड़ता था। यद्यपि प्राचीन काल से मध्य काल तक अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथ रचे गये। उदाहरणस्वरूप— भरत मुनि रचित ‘नाट्यशास्त्र’ भारतीय संगीत की अनुपम व अद्वितीय देन है। इसमें संगीत के आधारभूत मूल तत्वों जैसे स्वर, श्रुति, ताल, वाद्य, रस, भाव, ग्राम, छन्द इत्यादि का उल्लेख मिलता है इसे ‘पंचम वेद’ भी कहा गया है। बाद में मंतंग मुनि ने ‘वृहद्देशीय’, शारंगदेव ने ‘संगीत-रत्नाकर’ तथा अन्य अनेक संगीतज्ञों ने संगीत के शास्त्र पक्ष को उजागर करते हुये विविध ग्रंथ लिखे। किन्तु महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि उस समय संगीत के क्रियात्मक पक्ष को सुरक्षित रखने हेतु कोई विशेष तकनीक अथवा पद्धति नहीं थी, जिससे तत्कालीन क्रियात्मक सांगीतिक स्वरूप का अनुमान लगाया जा सके अर्थात् जिस

\* एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत (गायन) विभाग, आचार्य नरेन्द्र देव नगर निगम, महिला महाविद्यालय, हर्षनगर, कानपुर।

तकनीक के माध्यम से संगीत को सुरक्षित रखा जा सके, तथा जिससे तत्कालीन एवम् आने वाली पीढ़ी प्रत्यक्ष रूप से लाभान्वित हो सकती। सभी कुछ गुरु कृपा पर निर्भर था, वह भी मौखिक प्रशिक्षण के रूप में। इसके अतिरिक्त मध्य युग में अकबरनामा, आइने-अकबरी जैसे अनेक ग्रंथ लिखे गये जिनमें उस समय के संगीतज्ञों, गायकों तथा वादकों की सांगीतिक उत्कृष्टता एवम् निपुणता के विषय में तो जानकारी प्राप्त होती है कि वे उत्कृष्ट कलाकार थे किन्तु इन ग्रंथों को पढ़कर मात्र इस बात का अनुमान ही लगाया जा सकता था कि वे कैसे उच्चस्तरीय कलाकार हुआ करते थे।

ऐसा माना जाता था कि जहाँ एक ओर राज दरबार में संगीत अपने चरम उत्कर्ष पर था वहीं दूसरी ओर भक्ति आन्दोलन अपने पूरे उफान पर था। विविध सम्प्रदायों के लोग जैसे अष्टछाप कवि, पुष्टिमार्गीय तथा हवेली संगीत ने ध्रुपद, धमार गायन को पुष्पित पल्लवित किया।

उस समय के बारे में यह कहा जा सकता है कि—“संगीत एवं पद गायन की वह पहली धारा जो शाही दरबारों की शोभा बनकर रस की वर्षा कर रही थी, मनोरंजन के आनन्द का साधन बन रही थी। उसी युग में दूसरी धारा आत्मिक आनन्द, भगवत्प्राप्ति हेतु ब्रजभूमि में भक्त कवि गायकों द्वारा सभी जनमानस एवं सम्राट को रस विभोर करने के लिये बहाई जा रही थी।”<sup>2</sup>

समय परिवर्तन के साथ संगीत के क्षेत्र में ख्याल तथा तुमरी गायन शैली का पदार्पण हुआ। ध्रुपद, धमार शैली की लोकप्रियता में कमी आई तथा ख्याल एवम् तुमरी शैली का प्रचलन बढ़ा। अब स्थिति यह है कि “ख्याल हिन्दुस्तानी कण्ठ संगीत की सर्वाधिक लोकप्रिय शैली होकर जम गया है। वर्तमान शास्त्रीय संगीत से वह इतना घुल-मिल गया है कि उसके बिना रागदारी संगीत की कल्पना ही नहीं की जा सकती।”<sup>3</sup>

इसी दौरान संगीत के क्षेत्र में घरानों की नींव पड़ी। ये घरानेदार कलाकार संकीर्ण प्रवृत्ति के हुआ करते थे। वे अपना ज्ञान किसी को देना नहीं चाहते थे बस उसे पीढ़ी-दर-पीढ़ी ही आगे बढ़ाते थे। उन्हें अपनी गायकी पर बड़ा गर्व था, यदि कोई संगीत सीखने का इच्छुक हो तो वर्षों उसे उस्ताद के घर रहकर उसकी सेवा करनी पड़ती थी तभी वे संगीत सीख सकते थे, उस समय सभी कुछ मौखिक परम्परा पर ही आधारित था। यह व्यक्ति विशेष के निजि व्यक्तित्व पर निर्भर करता था कि वे कब, किसे, कितना हृदय खोल कर संगीत की शिक्षा-दीक्षा प्रदान करेंगे। इस बात की कोई निश्चितता नहीं होती थी कि वह अपना समस्त ज्ञान किसी बाहरी व्यक्ति को दे ही देंगे। किन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि “उन कलाकारों के पास विद्या का जो भण्डार था, बन्दिशों की जो विपुलता थी, दीर्घ साधना का जो तेज था, कला के प्रति जो समर्पण की भावना थी, वे सचमुच आजकल कम मिलती हैं।”<sup>4</sup>

हम यह कह सकते हैं कि जब अंग्रेजों ने भारत पर आधिपत्य स्थापित कर लिया तो संगीत की स्थिति परिवर्तित हुई। मुगल काल में जब तक राजा महाराजाओं का शासन था संगीत राज्याश्रय में था, जिसमें कलाकार अपनी आजीविका की चिन्ता न करते हुए अपना पूरा ध्यान संगीत साधना में लगाते थे। अंग्रेजी शासन काल में संगीत समाज के ऐसे व्यवसायी लोगों के हाथों में आ गया कि उनके लिये व्यक्तिगत स्वार्थ ही सर्वोपरि था, इस कारणवश घरानों को और अधिक आश्रय मिला। संभ्रान्त परिवार के लोग संगीत सीखना अच्छा नहीं समझते थे तथा उनके मन में संगीत के प्रति अनादर भाव बढ़ता ही जा रहा था।

“संगीत कला व संगीतज्ञों को पुनः समाज में प्रतिष्ठा मिल सके, इसके लिए आवश्यक था कि संगीत का सम्बन्ध जन साधारण से स्थापित हो। तत्कालीन सामाजिक व राजनैतिक मांग के अनुसार बीसवीं सदी में संगीत शिक्षा पद्धति में युगान्तरकारी परिवर्तन आया।”<sup>5</sup>

संगीत को समाज में पुनः प्रतिष्ठित करने के लिये पण्डित विष्णु नारायण भातखण्डे व पण्डित विष्णु दिगम्बर पलुष्कर ने अथक प्रयत्न किये। जिसके लिये हम सभी को पं० विष्णु नारायण भातखण्डे तथा पं० विष्णु दिगम्बर पलुष्कर जी का कोटि-कोटि कृतज्ञ होना चाहिये। उन्हीं के सद्प्रयासों से संगीत कुछ लोगों के एकाधिकार से मुक्त होकर सामान्य जनता के बीच प्रचलित हो सका तथा समाज में इसे सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा। आज उन्हीं के कारण संगीत को शिक्षण संस्थाओं में एक विषय के रूप में पढ़ाया जाने लगा है।

विष्णुद्वय ने पूरे भारतवर्ष में भ्रमण कर कलाकारों से बंदिश सीखी तथा उन्हें एकत्रित किया। भातखण्डे स्वर लिपि पद्धति तथा पलुष्कर दोनों की ही स्वर लिपि पद्धति के माध्यम से बंदिशों को लिपिबद्ध कर सुरक्षित कर पाना सम्भव हो सका। उन्होंने संगीत कला के प्रचार-प्रसार हेतु विविध सांगीतिक सम्मेलन तथा समारोह स्थान-स्थान पर कराये।

1909-1910 से पं० भातखण्डे जी ने ग्रन्थों की रचना प्रारम्भ किया श्रीमलक्ष्य संगीतम् संस्कृत भाषा में, स्वर मालिका गुजराती भाषा में रची। इसके अतिरिक्त लक्षण गीत संग्रह नामक पुस्तक माला एवम् हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका नामक ग्रन्थ छः भागों में रचा। अभिनव राग मंजरी तथा अभिनव ताल मंजरी नामक मासिक पत्रिकाएं प्रकाशित कराईं। इसी प्रकार पं० विष्णु दिगम्बर पलुष्कर जी के द्वारा रचित ग्रंथों में राग-प्रवेश, बाल प्रकाश, संगीत बाल-बोध, टप्पा गायन, भारतीय संगीत लेखन पद्धति, संगीत तत्व दर्शक, भजनामृत लहरी, स्वल्पालाप गायन के नाम लिये जा सकते हैं। पलुष्कर जी ने प्रिंटिंग प्रेस भी खोला।

पं० विष्णु नारायण भातखण्डे जी ने लखनऊ में 'मैरिस कालेज ऑफ म्यूजिक' (आज भातखण्डे संस्कृति विश्वविद्यालय), ग्वालियर में माधव संगीत महाविद्यालय तथा बड़ौदा के म्यूजिक कॉलेज की स्थापना की।

वहीं पं० विष्णु दिगम्बर पलुष्कर जी ने लाहौर गांधर्व महाविद्यालय, बम्बई गांधर्व महाविद्यालय की स्थापना की, बाद में गांधर्व महाविद्यालय की अनेक शाखायें खुलीं।

इन्हीं के प्रयासों से स्वतन्त्रता के पूर्व ही घराना पद्धति के साथ-साथ संस्थागत शिक्षा प्रणाली में संगीत शिक्षा प्रारम्भ हो गई। 1952-53 में उच्चतर शिक्षा आयोग ने संगीत को पाठ्यक्रम में महत्व देने की बात कही। संगीत को पाठ्यक्रम में महत्व देने की बात कही। विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में संगीत एक विषय के रूप में पढ़ाया जाने लगा।

आज संगीत की शिक्षण संस्थाओं के अतिरिक्त घरानागत शिक्षण प्रणाली भी समानान्तर रूप से क्रियाशील है। लोग स्वेच्छा से घरानेदार कलाकारों से भी उच्च स्तरीय संगीत शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। आज संचार माध्यम के व्यापक प्रचार-प्रसार से वर्तमान युग के छात्र/छात्रायें घरानेदार गायकी के महत्व को अच्छे से जानने लगे हैं तथा किसी योग्य, सहृदय गुरु का सानिध्य पाने हेतु लालायित रहते हैं। वे कोलकाता की ITC Research Academy जैसे अनेक संस्थाओं के महत्व को भी जान रहे हैं यद्यपि पूर्व में संचार माध्यमों के अभाव में छात्र/छात्रायें दिशा विहीन हो जाते थे। सही समय पर, सही संस्था में प्रवेश न पा सकने के कारणवश उनकी प्रतिभा व्यर्थ हो जाती थी, किन्तु कुछ संगीत सीखने के इच्छुक शिक्षार्थी शिक्षण संस्थाओं में संगीत सीखने हेतु प्रवेश पाने में सफल भी रहते थे।

यदि शिक्षण संस्थाओं में संगीत शिक्षण प्रणाली का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया जाये तो यह ज्ञात होता है कि-

1. आज वर्ण भेद, लिंग भेद, जाति भेद से परे शिक्षार्थी इन संस्थाओं में प्रवेश लेकर संगीत शिक्षा ग्रहण कर सकता है, जो कि पूर्व के समय में प्रायः कठिन था।
2. शिक्षण संस्थाओं में संगीत विषय के रूप में आने से समाज का दृष्टिकोण संगीत के प्रति सकारात्मक हुआ है तथा उसके प्रति रुचि बढ़ी है।
3. शिक्षण संस्थाओं में संगीत के शास्त्र तथा क्रियात्मक दोनों पक्षों का अध्ययन कराया जाता है।
4. आज कम समय तथा कम वित्तीय खर्च में संगीत शिक्षा ली जा सकती है।
5. विद्यार्थियों की रुचि शोध प्रवृत्ति की ओर बढ़ी है।
6. संगीत का प्रचार-प्रसार बढ़ा है तथा वह सर्वसाधारण की पहुंच में आया है।
7. आर्थिक रूप से पिछड़े विद्यार्थी भी छात्रवृत्ति प्राप्त कर शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।
8. संगीत की विविध प्रतियोगिताओं जैसे युवा महोत्सव इत्यादि में विद्यार्थियों के जाने से उन्हें मंच उपलब्ध होता है उनमें प्रतिस्पर्धा की भावना आती है वे दूसरों को देख कर आगे बढ़ने हेतु प्रेरित होते हैं तथा विजयी होने पर उनका उत्साहवर्धन होता है।

संगीत शिक्षा का मुख्य उद्देश्य अच्छे कलाकार तथा संगीतज्ञ तैयार करना है। किन्तु क्या कारण है कि आज शिक्षण संस्थाओं से शिक्षा ग्रहण किये शिक्षार्थी उस स्तर तक नहीं पहुंच पा रहे हैं? यह एक विचारणीय तथ्य है।

“संगीत की शिक्षा प्रदान करने का जो वर्तमान स्वरूप हमारे सामने है, उसके प्रमुख सोपान छात्र, शिक्षक, शिक्षण पद्धति, प्रशासन (संस्था, प्रशासन व यू०जी०सी० इत्यादि) एवं संगीत विषय की परीक्षा-प्रणाली है। इन पाँचों के कर्तव्य, परस्पर समन्वय व सहयोग तथा निजि रुझान एवं संगीत के प्रति वांछित जुनूनी समर्पण के फलस्वरूप जो स्तरीय परिणाम सामने आने चाहिये वे आज प्रायः दृष्टिगत नहीं हो रहे।”<sup>6</sup>

अतएव कहाँ क्या कमी रह जा रही है उसका अध्ययन कर उस समस्या का समाधान किया जा सके। इन शिक्षण संस्थाओं की संगीत शिक्षण प्रणाली में कमियाँ इस प्रकार हैं—

1. संगीत विषय को अन्य विषयों की भाँति मान लिया जाता है अतः यहाँ छात्र/छात्राओं की संख्या बढ़ाने पर जोर दिया जाता है, उनकी योग्यता पर नहीं।
2. संस्थाओं में प्रवेश हेतु कोई प्रयोगात्मक परीक्षा नहीं ली जाती है।
3. कुछ विद्यार्थी इसलिये भी संगीत विषय में प्रवेश लेते हैं कि यह एक प्रायोगिक विषय है अतः इसमें अच्छे अंक तो मिल ही जायेंगे। भले ही उन्हें 'सा' लगाना भी न आता हो। कुछ विद्यार्थियों में यह भ्रम होता है कि गीत, गजल, भजन या फिल्मी संगीत ही, संगीत विषय है।
4. कक्षा का पाठ्यक्रम जटिल होता है। कम समय में अधिक पाठ्यक्रम कराना मात्र औपचारिकता रह जाता है। पूर्व में वार्षिक परीक्षा प्रणाली फिर भी ठीक थी छात्र/छात्रायें रागों और तालों का अध्ययन कर लेते थे किन्तु अब राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के आ जाने से भी जल्दी-जल्दी परीक्षाओं का आना तथा पाठ्यक्रम और बढ़ जाना संगीत विषय के लिये घातक सिद्ध हो रहा है। यद्यपि NEP में 45 मिनट के कालखण्ड को बढ़ा कर 01 घण्टा कर दिया गया है जो कि एक सकारात्मक पहल है।
5. विद्यार्थियों के घर में सांगीतिक माहौल की कमी भी एक नकारात्मक पहलू है।
6. कई विद्यालयों, महाविद्यालयों में तबला संगतकार का न होना भी बड़ी कमी है, इससे विद्यार्थी प्रतिदिन तबले पर रियाज न कर पाने की वजह से ताल पक्ष में पीछे रह जाते हैं।
7. कॉलेज प्रशासन द्वारा संगीत विभाग के वाद्ययन्त्रों की समय-समय पर रिपेयरिंग न करवाना अथवा वाद्ययन्त्रों का अभाव भी एक बड़ी कमी है।
8. अधिकतर संस्थाओं में संगीत विभाग के इलेक्ट्रॉनिक संयन्त्र जैसे सी०डी०, ऑडियो सिस्टम खराब पड़े रहते हैं जिससे शिक्षक, छात्र/छात्राओं को शास्त्रीय संगीत के कलाकारों का गायन, वादन सुना ही नहीं पाते हैं। यद्यपि आज के तकनीकी युग में इसका विकल्प कम्प्यूटर तथा इंटरनेट है किन्तु वह भी अधिकांश संगीत विभागों को उपलब्ध नहीं कराया जाता है।
9. आज विद्यार्थियों में धैर्य की कमी हो गई है वे कम समय में लोकप्रिय होने तथा ख्याति प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं। वे आज फिल्म संगीत तथा पाश्चात्य संगीत से अधिक प्रभावित दिखते हैं, जबकि शास्त्रीय संगीत धैर्य माँगता है।
10. शिक्षकों पर कक्षा के अतिरिक्त आये दिन सांस्कृतिक कार्यक्रमों का संचालन तथा संयोजन, महाविद्यालय की विविध समितियों के कार्य तथा अतिरिक्त कार्य भार भी उनके शिक्षण कार्य की गुणवत्ता को प्रभावित करता है।
11. प्राचार्य, प्रशासन तथा गैर सांगीतिक व्यक्तियों द्वारा संगीत विषय को न समझ पाना एक बड़ी कमी है, वे न वाद्यों के महत्व को समझते हैं, न संगतकार के। अकस्मात् एक दिन पूर्व सांस्कृतिक कार्यक्रम कराने का आदेश आ जाने से शिक्षक परेशान हो उठते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि चाहे शास्त्रीय संगीत हो अथवा सुगम संगीत, एकल गायन हो अथवा समूह गायन उसके पर्याप्त अभ्यास की आवश्यकता होती है। समूह गायन में यदि सामंजस्य न हो तो प्रस्तुतिकरण खराब हो जाता है, इन सब दबावों के बाद पाठ्यक्रम पूर्ण कराना अध्यापकों के लिये एक बड़ी चुनौती का कार्य बन जाता है।

“आने वाले समय में भारतीय शास्त्रीय संगीत के विकास के लिए सुयोग्य शिक्षण, शोधकार्य तथा मनोवैज्ञानिक व नवीन क्रियात्मक प्रयोगों की आवश्यकता है।”<sup>7</sup>

कुछ सुझाव इस प्रकार हैं—

1. संगीत एक प्रयोगात्मक विषय है जिसकी प्रस्तुति मंच पर होती है सच्चाई तो यह है कि इस विषय के शिक्षण के मापदण्ड अन्य विषयों के समान हो ही नहीं सकते। यह अत्यन्त कोमल, मार्मिक तथा भावप्रधान विषय है इसका अध्ययन, अध्यापन तथा मूल्यांकन अन्य विषयों के समान किया जाना न्यायपूर्ण नहीं लगता। यद्यपि यह एक सकारात्मक पक्ष है कि इसे शिक्षण संस्थाओं में विषय के रूप में मान्यता मिली इसलिये जैसे अन्य विषयों के अध्ययन, अध्यापन हेतु नियम है वैसा ही संगीत विषय पर भी लागू कर दिया जाता है।

2. वास्तव में यह एक समूह में सिखाया जाने वाला विषय नहीं है क्योंकि प्रत्येक विद्यार्थी पर व्यक्तिगत रूप से उसकी त्रुटियों का तत्काल संशोधन करना होता है अन्यथा गलत स्वर गले में बैठ जाते हैं. अतः संख्या के स्थान पर यदि विद्यार्थियों की योग्यता को निखारने का प्रयास किया जाये तो वह अधिक उचित होगा।
3. कक्षा के अतिरिक्त बारी-बारी से विद्यार्थियों का मंचप्रदर्शन कार्यक्रम भी पाठ्यक्रम में होना चाहिये, जिससे उनकी झिझक खुले तथा वे श्रोताओं के समक्ष निर्भीक होकर अपनी प्रस्तुति दे सके, इससे एक अन्य सकारात्मक बात यह होगी कि जो विद्यार्थी कक्षा में ध्यान न देकर लापरवाही से कक्षा करते हैं, वे गम्भीर हो जायेंगे।
4. पाठ्यक्रम में रागों की संख्या के स्थान पर प्रस्तुति की गुणवत्ता सुधारने पर बल देना चाहिये।
5. विद्यार्थियों को व्यावसायिक दृष्टिकोण से हारमोनियम तथा ढोलक इत्यादि एवं संगत का भी प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिये।
6. स्नातकोत्तर स्तर पर पाठ्यक्रम रोजगारोन्मुखी बनाये जायें। अतः परिस्थितियों को देखते हुए शिक्षण संस्थाओं से कलाकार का निर्माण होने की उम्मीद करना बेमानी है। एक स्तर तक ही विद्यार्थी वहाँ संगीत सीख सकता है। मंच प्रदर्शक बनने के लिए उसे किसी न किसी कलाकार के शिष्य बनने की मोहर लगवानी ही पड़ेगी। कलाकार बनने के अतिरिक्त भी संगीत में रोजगार की अन्य अनेक संभावनाएं हैं जैसे, संगीत शिक्षक, वाद्य निर्माण, तथा संगीत रचनाकार, संगीत समीक्षात्मक अध्ययन इत्यादि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संगीत शिक्षा का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। आज आवश्यकता पर्याप्त सुधार की है तथा विद्यार्थियों को उनकी रुचि से सम्बद्ध प्रशिक्षण एवं जानकारी प्रदान करने की है।

#### सन्दर्भ ग्रंथ सूची:-

1. जैन, डॉ० निशि, संगीत- शिक्षा और नई टेक्नोलॉजी, संगीत पत्रिका, जनवरी-फरवरी, 2001, सहस्राब्दी अंक, पृ०-114.
2. बैनर्जी, डॉ० नमिता (1996), मध्यकालीन संगीतज्ञ एवं उनका तत्कालीन समाज पर प्रभाव, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ०-102.
3. शर्मा, डॉ० स्वतन्त्र, (1989), पाश्चान्य स्वरलिपि पद्धति एवं भारतीय संगीत, टी०एन० भार्गव एण्ड सन्स, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, पृ०-202.
4. शर्मा, डॉ० स्वतन्त्र, (1995) भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, टी० एन० भार्गव एण्ड सन्स, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण पृ० 199.
5. जैन, डॉ० निशि, संगीत- शिक्षा और नई टेक्नोलॉजी, संगीत पत्रिका, जनवरी-फरवरी, 2001, सहस्राब्दी अंक, पृ०-116.
6. सक्सेना, डॉ० गुलशन, संगीत-शिक्षा के वर्तमान ढाँचे के सुधार की आवश्यकता, संगीत-पत्रिका, अप्रैल, 2010 पृ०-28.
7. नाज, डॉ० सबीहा, भारतीय शास्त्रीय संगीत की शिक्षा एवं समाधान, संगीत-पत्रिका, फरवरी, 2006, पृ०-15.



## वाल्मीकि रामायण की नायिका सीता का आधुनिक परिवेश में अध्ययन

अरुन्धती दूबे\*  
डॉ. अशोक कुमार वर्मा\*\*

सारांश

यदि नारी स्थिति का अध्ययन भारतीय इतिहास के अनुसार किया जाय तो वैदिक काल से लेकर आज तक नारी के विषय में अनेकों लेख उपलब्ध हैं, नारी की विद्वता और शक्ति के बारे में ऋग्वेद (देवीसूक्त)<sup>1</sup> में वर्णन मिलता है।

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां  
चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।  
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा  
भूरिस्थात्रा भूर्यविशयन्तीम् ॥

इसके अलावा नारी की स्वतन्त्रता और सम्मान में ऋग्वेद में (विवाह सूक्त)<sup>2</sup> में वर्णन प्राप्त है-

सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्वा भव ननान्दरि भव सम्राज्ञी अधि देवरान् ॥ अथर्ववेद और यजुर्वेद<sup>3</sup> में स्त्री को गृह की प्रतिष्ठा तथा स्त्री की शिक्षा व उसका अधिकार बताया है। यथा - "स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ।" मनुस्मृति<sup>4</sup> में भी नारी सम्मान के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा गया कि-

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः। यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥ "महाभारत<sup>5</sup> में "नास्ति स्त्री समो बन्धुर्नास्ति स्त्री समो गुरुः"। इस प्रकार सर्वत्र नारी महिमा क उल्लेख मिलता है।

वाल्मीकि रामायण की सीता का आदर्श चरित्र व नारी महिमा को गौरवन्वित करता है। अतः वाल्मीकि रामायण कि सीता का आदर्श व्यक्तित्व चरित्र अनुकरणीय है, इसी विषय पर संक्षिप्त अध्ययन किया गया है।

**प्रस्तावना** - भारतीय वाङ्मय में वाल्मीकि रामायण आदि काव्य के रूप में प्रतिष्ठित है। इसमें नायिका सीता का चरित्र एक आदर्श भारतीय नारी के रूप में दर्शाया गया है, जैसे अरण्यकाण्ड में वर्णन मिलता है, नारीणां उत्तमं त्रेजः .....<sup>6</sup> सीता चरित्र को न केवल पतिव्रता नारी बल्कि बहुमुखी व्यक्तित्व से परिपूर्ण संघर्षशील नारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। सीता की करुणा, ममता, उदारता तथा नारी जीवन की संघर्षशीलता का अत्यन्त मार्मिक ढंग से वर्णन किया गया है। सीता अपने उत्तर दायित्वों का विषम परिस्थितियों में भी पालन करते हुए एक स्वतन्त्र, स्वावलम्बि तथा साहसी महिला के रूप में देखी जाती हैं। वाल्मीकि जी ने स्त्री के प्राचीन भारतीय जीवन मूल्य, सांस्कृतिक चेतना तथा आदर्श नैतिकता का समन्वित रूप ही सीता के रूप में जीवन्त कर दिया है। सीता का त्याग, धैर्यता और सहज भाव से अपने उत्तर दायित्वों का निर्वहन करके एक आत्मविश्वासी और स्वावलम्बि महिला होना, नारी के प्रति उत्कृष्ट दृष्टिकोण का परिचायक है। पारिवारिक मूल्य व मानवीय संवेदना का जीवन्त उदाहरण सीता के रूप में मिलता है सीता किस प्रकार एक स्वाभिमानी महिला के रूप में अपने सम्पूर्ण जीवन को कर्तव्य परायणता, धैर्यता व मयार्दित ढंग से व्यतीत करती हुई आधुनिक भारतीय नारियों के लिए प्रेरणा स्रोत है।

**वाल्मीकि रामायण में सीता का चरित्र -**

सीता का चरित्र बहुमुखी गुणों से युक्त है जिसका वर्णन संक्षेप में किया जा रहा है।

**त्याग तथा धैर्यता की प्रतिमूर्ति :-** सीता का व्यक्तित्व त्याग तथा धैर्यता से परिपूर्ण है, वह अयोध्या के महल व रानी के सभी सुखों का बिना मोह त्याग करके वनवासी राम के साथ जाने का निर्णय कर लेती है। उनकी धैर्यता के बारे में वर्णन आता है, जो सुंदरकाण्ड में इस प्रकार मिलता है -

सा तत्र शोकसन्तप्ता सीता शोक परायणां।  
ध्यायन्ती राममेकाग्रा तपस्विनीव भाविता।।<sup>7</sup>

**निष्ठावान और पतिव्रता पत्नी :-** सीता मन, क्रम व वचन से अपने पतिव्रता धर्म का पालन करती है, अयोध्याकाण्ड में उनकी पतिव्रता का प्रमाण इसी बात से मिल जाता है कि -

अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा।  
नापहर्तुमहं शक्या त्वया राम कदाचन।।<sup>8</sup>

सीता कहती है -

जैसे दिनकर की किरणें उससे अलग नहीं हो सकती वैसे ही मैं भी अपने स्वामी राम से अलग नहीं हो सकती।

\* शोधार्थिनी (संस्कृत), जवाहरलाल नेहरू स्मारक पी०जी० कालेज, महाराजगंज, उ०प्र०

\*\* शोध निर्देशक, सहायक आचार्य (संस्कृत), जवाहरलाल नेहरू स्मारक पी०जी० कालेज, महाराजगंज, उ०प्र०

**करुणा और संवेदनशीलता से परिपूर्ण -**

उनका करुणामयी व्यक्तित्व उनकी संवेदनशीलता जगत प्रसिद्ध है, वह सभी के प्रति दयाभाव रखती थी। वह रावण के प्रति भी करुणा का भाव रखती है, सुन्दरकाण्ड में ऐसा वर्णन प्राप्त है। यथा-

"यदि रामो दशग्रीवं इह हन्याद्राक्षसेश्वरम्।  
त्वां च हन्यात् सुसंकुद्धः स्यादयं मे मनोऽनघ॥<sup>9</sup>

सीता सोचती है, कि श्री राम क्रोधित होकर यदि रावण का वध करेंगे तो उसके साथ अन्य निर्दोष भी मारे जायेंगे, इस बात से व्याकुल हो उठती है। यह श्लोक सीता की सार्वभौमिक करुणा को दर्शाता है। वह हनुमान के प्रति मातृत्वपूर्ण करुणा रखती है, यथा

यदि रामस्य दूतस्त्वं वानरश्रेष्ठ वीर्यवान्।  
दिष्टया पश्यामि ते रूपं प्रियं प्रियहिते रतम्॥

यह वर्णन सुन्दरकाण्ड<sup>10</sup> में मिलता है।

**साहसी नारी** - सीता का साहस हर परिस्थितियों में झलकता है, चाहे महल छोड़कर वन जाना हो और चाहे रावण के सामने दृढ़ता पूर्वक रहना। यथा -

त्वया सह गमिष्यामि वनम् य न संशयः।  
न हि मे जीवितेनार्थो न चापि धन धान्यके॥<sup>11</sup>

वह कहती है कि राम के साथ वन जाऊंगी इसमें संदेह नहीं, क्योंकि स्वामी बिना जीवन व धन का कोई मोल नहीं है। रावण को उत्तर देती हुई सीता कहती है नारी के आत्मसम्मान व साहस का प्रतीक है -

न त्वं रामस्य सदृशो दास्यसे रावनात्मज<sup>12</sup>।  
हे रावण। श्री राम के समान तुम नहीं हो, मैं तुम्हारी दासी भी नहीं बन सकती।

सीता एक निष्क्रिय स्त्री पात्र नहीं अपितु सभी परिस्थितियों में सक्रिय निर्णय लेने वाली तथा अपने अधिकारों के प्रति जागरूक थी।

**सीता के प्रति समाज का पारम्परिक दृष्टिकोण -**

सीता को भारतीय समाज एक आदर्श भारतीय नारी के रूप में प्रतिष्ठित करता है, क्योंकि सीता अपने सभी उत्तरदायित्वों का बखूबी निर्वहन करती हैं। राजमहल की सुख सुविधाओं में बचपन से लेकर बड़े होने तक का जीवन पला-बढ़ा फिर भी अपने पति राम के वनगमन के अवसर पर सम्पूर्ण सुखों का त्यागकर वनवास का चयन करती है, जिससे वह अपने स्वामी की सेवा करके अपने पतिव्रत धर्म का पालन कर सकें। इसके अतिरिक्त लंका से आने पर समाज को अपनी पतिव्रता का प्रमाण देने के लिए अग्नि परीक्षा देती है, यथा-

यदि मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्  
तदा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः॥<sup>13</sup>

यदि कभी भी मेरा हृदय राम से विचलित न हुआ हो तो अग्नि देव मेरी रक्षा करें। एक आज्ञाकारी और समर्पित स्त्री के रूप में वह अन्त में समाज के लिए स्वयं का त्याग कर दे देती हैं।

**आज के युग में सीता का महत्व-**

सीता-चरित्र को आधुनिक युग में अनेकों<sup>14</sup> लेखकों द्वारा नवीन दृष्टिकोण से मूल्यांकित किया जा रहा है-

**सशक्त नारीवादी दृष्टिकोण-**

सीता एक अबला पीड़ित नारी नहीं बल्कि प्रतिरोध के साथ-साथ अपने कठिन समय में संघर्ष करने वाली स्त्री हैं। राक्षसराज रावण की लंका में रहकर भी रावण के सामने दृढ़ता पूर्ण आचरण उनके साहस और आत्मबल को दर्शाता है यथा - अहम् राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।<sup>15</sup> सीता कहती है मैं मन से भी श्री राम के अलावा अन्य किसी का चिन्तन नहीं करती हूँ। उनके जीवन में अग्नि परीक्षा व परित्याग की घटना का होना एक संकुचित पितृसत्तात्मक व्यवस्था का निन्दात्मक स्वरूप है अतः आधुनिक शोधों में ऐसा भी मत है, कि सीता का चरित्र पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती देने वाला था।

**सीता के प्रति मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण -**

सीता एक स्वाभिमानी नारी थी। उन्होंने जीवन में जो भी दुख और संघर्ष था उसको धैर्यता से सहन करते हुए अपना कर्तव्य निर्वहन कर एक अद्भुत मानसिक शक्ति का उदाहरण दिया। सीता अपने जीवन की हर परिस्थितियों में मजबूत और महत्वपूर्ण निर्णय लेती हैं। राजमहल छोड़कर वन जाना तथा परित्याग के बाद लवकुश का पालन पोषण उनकी आत्मनिर्भरता का परिचायक है। सीता द्वारा स्वयं के जीवन के लिए किये गए महत्वपूर्ण निर्णय तथा उनका मजबूत आत्मबल आज की मानसिक समस्याओं तथा संघर्षों में प्रेरणास्रोत, का काम कर रहा है। सीता विपरीत परिस्थितियों में भी मानसिक संतुलन बनाये रखती हैं।<sup>16</sup> पांडे प्रबीनराज के अनुसार ऐसा वर्णन मिलता है। आत्म सम्मान के लिए पृथ्वी में समाहित होना, रावण के भय व प्रलोभना के बाद भी अडिग रहना अंतिम निर्णय पृथ्वी में समाहित होना स्वतंत्र व्यक्तित्व का परिचायक है

तथा आधुनिक शोधों में सीता को मजबूत स्वावलम्बी नारी, योद्धा तथा नेतृत्व करने वाली आत्मसम्मान से भरपूर पितृसत्तात्मक मूल्यों को आलोचनात्मक चुनौती देता है।

#### आधुनिक अध्ययनों में सीता का बहुमुखी व्यक्तित्व-

आधुनिक अध्ययनों में सीता को बताया गया, कि सीता केवल पत्नी मात्र नहीं अपितु एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व हैं, वह केवल आदर्श नारी ही नहीं बल्कि संघर्षशील महिला भी हैं। वह केवल सहनशीलता, की प्रतिमूर्ति नहीं मजबूत निर्णय लेने वाली स्त्री हैं।

जहाँ पितृसत्तात्मक समाज ऐसी सोच रखता है कि पुरुष के बिना नारी जीवन सरलता, गरिमापूर्ण ढंग से नहीं चल सकता है, सीता चरित्र इस सोच पर टिप्पणी करता हुआ दिखाई देता है। अतएव जो स्त्री जीवनदायनी है वह आवश्यकता पड़ने पर संघर्षशील परिस्थितियों में भी सामाजिक मूल्यों में संतुलन बनाकर स्वतंत्र रूप से जीवन निर्वहन भी कर सकती है।

#### सीता-चरित्र नैतिकता का चरमोत्कर्ष-

सीता चरित्र एक आदर्श भारतीय नारी का है। जो आज भी नैतिकता व. जीवन मूल्यों को प्रभावित करता है। सीता का व्यक्तित्व सभी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपनी नैतिकता व आदर्श चरित्र से समझौता नहीं करता। चाहे वह रावण का प्रलोभन हो या फिर स्वयं के बच्चों का भरण पोषण कहीं भी वह अपने कर्तव्य पालन में अनैतिकता का सहारा नहीं लेती। अतः वह आत्मसम्मान व संघर्ष का प्रतीक है। उनका यह आदर्श चरित्र आधुनिक समाज को नैतिकता व जीवन मूल्यों की शिक्षा देता है।

#### निष्कर्ष :-

आज का आधुनिक समाज जो पाश्चात्य संस्कृति की ओर उन्मुख हो रहा है उसका परिणाम यह है कि नैतिकता का पतन हो रहा है। इसके अतिरिक्त स्वतंत्र व्यक्तित्व व अकेलेपन के नाम पर आज का समाज दुराचार में लिप्त हो रहा है। इस कठिन परिस्थितियों से निकलने के लिए सीता चरित्र अनुकरण योग्य है। सीता केवल आस्था का विषय नहीं बल्कि आत्म-सम्मान, संघर्षशील व स्वावलम्बी होने के साथ ही स्वतंत्र चेतना का प्रतीक है अर्थात् एक आत्मनिर्भर स्वतंत्र स्त्री सत्ता का परिचायक है। अतएव सीता चरित्र समय के साथ बदलता हुआ स्थिर नहीं गतिशील चरित्र है। जो हर काल में नए अर्थ ग्रहण करता हुआ दिखाई देता है।

#### सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. ऋग्वेद का देवी सूक्त - 10.125.3
2. ऋग्वेद का विवाह सूक्त - 10.85.26
3. यजुर्वेद - 20.9
4. मनुस्मृति - 3.56
5. महाभारत - अनुशासनपर्व 46.5
6. वा० रा० अरण्यकाण्ड - 47.10
7. वा० रा० सुन्दरकाण्ड - 15.20
8. वा० रा० अयोध्याकाण्ड - 27.6 अरण्यकाण्ड 47 श्लोक 21
9. वा० रा० सुन्दरकाण्ड -21.20
10. वा० रा० सुन्दरकाण्ड 36.17
11. वा० रा० अयोध्याकाण्ड 27.7
12. वा० रा० सुन्दरकाण्ड 21.15
13. वा० रा० युद्धकाण्ड 116.16
14. जी० आर० के मूर्ति - वा० रा० में - सीता एक नारीवादी आदर्श, पाल देवरावती रामायण के रूपांतरों का नारी वादी विश्लेषण, पेल्टियर मैरी डी - वाल्मीकि रामायण में सीता, मंडल रामकृष्ण- आधुनिक जीवन में रामायण की प्रसंगिकता ।
15. वा० रा० सुन्दरकाण्ड 26.6
16. पांडे प्रबीन राज - रामायण का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण (पृष्ठ संख्या :- 45,52,48,55)

## किशोरियों का मासिक धर्म स्वास्थ्य एवं स्वच्छता का समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. भावना डोभाल\*

### सारांश

मासिक धर्म महिलाओं में होने वाली एक प्राकृतिक प्रक्रिया है, जो किशोरावस्था में शुरू होती है। इस समय लड़कियों में शारीरिक, मानसिक और सामाजिक बदलाव होते हैं और उन्हें मासिक धर्म को सही तरीके से संभालना सीखना होता है। समाज में मासिक धर्म से जुड़े कई मिथक और वर्जनाएँ हैं, जिसके कारण लड़कियाँ जानकारी के अभाव में अस्वच्छ तरीकों का उपयोग करती हैं। इससे संक्रमण, स्वास्थ्य समस्याएँ, स्कूल से अनुपस्थिति और जीवन की गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसलिए मासिक धर्म स्वच्छता के बारे में जागरूकता बहुत जरूरी है। लड़कियों को सही जानकारी, स्वच्छता के उपाय और सैनिटरी उत्पादों के सही उपयोग व निपटान के बारे में शिक्षित किया जाना चाहिए। हर साल 28 मई को मासिक धर्म स्वच्छता दिवस मनाकर इस विषय पर जागरूकता बढ़ाई जाती है।

मासिक धर्म महिलाओं की प्रजनन आयु के दौरान होने वाली एक सामान्य शारीरिक प्रक्रिया है। यह महिला प्रजनन चक्र का एक प्राकृतिक हिस्सा है जो यौवनारंभ से शुरू होता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन 10 से 19 वर्ष की आयु के व्यक्ति को किशोर के रूप में परिभाषित करता है। किशोरावस्था बचपन से वयस्कता तक का संक्रमणकालीन काल है, और इस दौरान शारीरिक परिपक्वता, प्रजनन क्षमता, मनोवैज्ञानिक विकास और सामाजिक विकास में परिवर्तन होते हैं। किशोरावस्था एक लड़की के जीवन का महत्वपूर्ण समय होता है जब वे स्वस्थ और स्वच्छ तरीके से अपने मासिक धर्म के रक्तस्राव को प्रबंधित करने में सक्षम होती हैं और समायोजन करती हैं।

मासिक धर्म कई वर्जनाओं, गलत धारणाओं और मिथकों से जुड़ा हुआ है, जिसके कारण अक्सर लड़कियाँ मासिक धर्म के दौरान विभिन्न शैक्षिक, सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों से वंचित रह जाती हैं, जो इस विषय पर ज्ञान के विकास में बाधा उत्पन्न करती हैं। मासिक धर्म के बारे में ज्ञान और समझ की कमी से असुरक्षित स्वच्छता की आदतें विकसित हो सकती हैं, जिससे जननांग और प्रजनन पथ के संक्रमण, गर्भाशय ग्रीवा कैंसर, स्कूल से अनुपस्थिति, पढ़ाई में खराब प्रदर्शन और जीवन की समग्र गुणवत्ता में गिरावट का खतरा बढ़ जाता है। हमारी संस्कृति में, माता-पिता अपनी बढ़ती बेटियों से यौन मुद्दों पर बात नहीं करते हैं। लड़कियाँ और महिलाएँ इस विषय से जुड़ी वर्जनाओं के कारण अपनी जरूरतों और समस्याओं को व्यक्त करने में असमर्थ होती हैं, जो मासिक धर्म के दौरान अस्वच्छ प्रथाओं को अपनाने का मुख्य कारण है।

मासिक धर्म स्वच्छता एक महत्वपूर्ण मुद्दा है जिस पर खुलकर चर्चा की जानी चाहिए। किशोर स्कूली छात्राओं को मासिक धर्म के महत्व, द्वितीयक यौन लक्षणों के विकास, उपयुक्त सैनिटरी पैड के चयन और उसके उचित निपटान के बारे में शिक्षित और सूचित किया जाना चाहिए। अच्छी मासिक धर्म स्वच्छता न केवल शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए, बल्कि किशोर स्कूली छात्राओं की शिक्षा और नैतिक कल्याण के लिए भी आवश्यक है। महिलाओं और लड़कियों को अपने मासिक धर्म चक्र के प्रबंधन में आने वाली समस्याओं के समाधान के लिए वैश्विक, राष्ट्रीय और स्थानीय स्तर पर लागू किए जा सकने वाले उपायों को उजागर करने के लिए वर्ष 2014 से हर साल 28 मई को मासिक धर्म स्वच्छता दिवस मनाया जाता है।

मासिक धर्म और मासिक धर्म प्रथाएँ अभी भी वर्जनाओं और सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिबंधों से घिरी हुई हैं। जिसके परिणाम स्वरूप किशोरियों वैज्ञानिक तथ्यों और स्वच्छता स्वास्थ्य प्रथाओं से अनभिज्ञ हैं। जिसके परिणाम स्वरूप कभी-कभी प्रतिकूल स्वास्थ्य परिणाम सामने आते हैं।

किशोरी लड़कियों एक कमजोर समूह का गठन करती है विशेष रूप से भारत में जहाँ महिला से बच्चे कि अपेक्षा की जाती है वही मासिक धर्म को अभी भी भारतीय समाज में गंदा या अपवित्र माना जाता है। जिसकी वजह से लड़कियों को इन दिनों के दौरान मन्दिर पूजा-पाठ सब ऐसे कार्य करने की अनुमति नहीं होती है। क्योंकि यह एक अपवित्र प्रक्रिया मानी जाती है। मासिक धर्म की प्रतिक्रिया विषय के बारे में जागरूकता और ज्ञान पर निर्भर करती है। जिस तरह से एक लड़की की मासिक धर्म घटना के प्रति उसकी प्रतिक्रिया पर प्रभाव पड़ सकता है। यद्यपि मासिक धर्म एक प्राकृतिक क्रिया है। यह कई गलत धारणाओं और प्रथाओं से जुड़ा हुआ है। जो कभी-कभी

\* समाजशास्त्र विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। किशोरियों को किसी भी गंभीर बीमारी से बचाने हेतु व सभी प्रकार की शिक्षा देना जिससे वह लोग मासिक धर्म के बीच जो भी कठिनाई आती है उनका सामना चाह कर अच्छे से कर सके। मासिक धर्म की जानकारी के लिए शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। जिससे कि किशोरियों का स्वास्थ्य अच्छा रह सके।

आज भी मासिक धर्म और इससे संबंधी व्यवहारों में महिलाओं और किशोरियों के लिए कई धारणाएँ और सामाजिक सांस्कृतिक अवरोध हैं। इस दौरान साफ-सफाई नहीं होने एवं अस्वच्छ तौर तरीकें अपनाने से किशोरियों के स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा हो सकता है। जो आगे जाकर प्रजनन स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव डालता है। मासिक धर्म के दौरान उपयोग किए जाने वाले सुरक्षित उत्पादकों की सहज उपलब्धता ना होना बड़ी समस्या है और यह महिला किशोरी की गतिशीलता में बाधा डालता है। किशोरी बालिकाओं में मासिक धर्म के दौरान साफ-सफाई व प्रबंधन करने व्यक्तिगत स्वच्छता व सुरक्षित साधनों के बारे में जागरूकता पैदा करने और इन्हें लगातार व्यवहार में लाने, इस विषय पर उनकी चिन्ताओं व समस्याओं के उचित हल के लिए उन्हें प्रेरित करना आवश्यक है।

- महावारी बालिका के सयानी होने का एक लक्षण मात्र है परन्तु भारतीय परिवेश में सामान्यतः इसे विवशता कमजोरी और अपराध बोध से जोड़ा जाता है।
- महावारी शुरू होने के बाद लड़कियों का स्कूल आना कम हो जाता है या कई बार उनका स्कूल छूट जाता है।
- स्कूल घर और काम करने की हर जगह पर लड़कियों और औरते सहज रूप से स्वच्छता के साथ अपनी महावारी को स्वाभाविक क्रिया का प्रबंधन न कर पाने के कारण कई तरीके की परेशानियों का सामना करती हैं और इसके दुष्परिणाम उन्हें झेलने होते हैं। इसके साथ-साथ महावारी के समय पारिवारिक रीति-रिवाज किशोरियों के आत्म सम्मान को ठेस पहुंचाते हैं। महावारी के दौरान छुआ-छूत अपेक्षा और सबसे अलग करना है। जैसे व्यवहारों के कारण उसे शर्मिंदगी महसूस होती है।

#### मुख्य अवधारणाएँ:-

**मासिक धर्म:-** मासिक धर्म को महावारी रजो धर्म मेस्ट्रुअल साइकल या एमसी और पीरियड्स के नाम से भी जाना जाता है।

**मासिक धर्म कि परिभाषा-** महिलाओं के शरीर में हार्मोन में होने वाले बदलाव की वजह से गर्भाशय से रक्त और अंदरूनी हिस्से से होने वाली स्राव को मासिक धर्म कहते हैं।

**स्वच्छता की परिभाषा:-** स्वच्छ शब्द का अर्थ है अत्यंतसाफ, विशुद्ध उज्ज्वल व स्वस्थता प्रत्यय जोड़ने पर भाववाचक स्वच्छता का आशय सही प्रकार से साफ-सफाई निर्मलता एवं पवित्रता है मन हृदय, शरीर तथा वस्त्रों की घर बाहर, पानी वायु भूमि आदि की निर्मलता या सफाई रखना ही स्वच्छता कहलाती है।

**स्वास्थ्य की परिभाषा:-** दैहिक, मानसिक और सामाजिक रूप से पूर्णतः स्वस्थ होना समस्या विहीन होना ही स्वास्थ्य शारीरिक और सामाजिक रूप से अच्छे होने की स्थिति को स्वास्थ्य कहते हैं।

#### महिलाओं के जीवन पर मासिक धर्म से संबंधित मिथकों का प्रभाव

मासिक धर्म के दौरान पूजा कमरे में प्रवेश नहीं करना शहरी लड़कियों के बीच प्रतिबंधित होता है जबकि रसोईघर में प्रवेश नहीं करना ग्रामीण लड़कियों में मुख्य प्रतिबंध होता है। मासिक धर्म के दौरान लड़कियों और महिलाओं को प्रार्थनाओं और पवित्र पुस्तकों को छूने से भी प्रतिबंधित किया जाता है। इस मिथक के लिए आधारभूत आधार, मासिक धर्म से जुड़ी अशुद्धता की सांस्कृतिक मान्यता ही है। एक अध्ययन में भाग लेने वाली महिलाओं ने यह भी बताया कि मासिक धर्म के दौरान शरीर कुछ विशिष्ट गंध या किरण निकलता है, जो संरक्षित भोजन को खराब करता है। और इसलिए उन्हें अचार जैसे खाद्य पदार्थों को छूने की अनुमति नहीं है। हालांकि, जब तक सामान्य स्वच्छता उपायों को ध्यान में रखा जाता है तब तक कोई वैज्ञानिक परीक्षण मासिक धर्म को किसी भी भोजन के खराब होने के कारण के रूप में नहीं दिखाता है। कुछ संस्कृतियों में, महिलाएं अपने कपड़ों को मासिक धर्म के दौरान बुरी आत्माओं द्वारा उपयोग करने से रोकने के लिए दफन करती हैं। सूरीनाम में, मासिक धर्म रक्त खतरनाक माना जाता है, और एक नरभक्षी व्यक्ति काले जादू का उपयोग करके मासिक धर्म वाली महिला या लड़की को नुकसान पहुंचा सकता है। यह भी माना जाता है कि एक महिला एक पुरुष पर उसकी इच्छा को लागू करने के लिए मासिक धर्म के रक्त का उपयोग कर सकती है। दिलचस्प बात यह है कि भारत सहित एशिया में, इस तरह के विश्वास अभी भी प्रचलित हैं। हालांकि, इसके लिए कोई तार्किक या वैज्ञानिक स्पष्टीकरण नहीं लगता है। भारत के कुछ हिस्सों में, मासिक धर्म से गुजर रही लड़कियों/महिलाओं द्वारा कुछ सख्त आहार प्रतिबंधों का भी पालन किया जाता है जैसे कि दही, चिमनी, और अचार जैसे खट्टे भोजन को छूने से मना किया जाता है। क्योंकि यह ऐसे खाद्य पदार्थ हैं। जिसमें जल्दी सक्रामण फैलने का डर रहता है।

ऐसा भी माना जाता है कि ऐसे खाद्य पदार्थ मासिक धर्म प्रवाह को परेशान करेंगे या रोक देंगे। जहां तक अभ्यास का सवाल है, भारत और अन्य जगहों पर कई अध्ययनों से पता चला है कि कई किशोर लड़कियों का मानना है कि मासिक धर्म के दौरान शारीरिक

गतिविधि करना, व्यायाम करना, उन्हें प्रीमेनस्ट्रल सिंड्रोम और डिसमोनोरिया के लक्षणों से छुटकारा पाने में मदद कर सकता है और सूजन से छुटकारा दिलाता है। व्यायाम से शरीर से सेरोटोनिन की रिहाई भी होती है, जिससे कोई ज्यादा खुश महसूस करता है। कोई आराम महसूस करता है। भारत के कुछ हिस्सों में, शुद्धता और प्रदूषण के विचारों पर हिंदू धर्म केंद्र की धारणाएं प्रबल हैं। कि मासिक धर्म में महिलाओं को स्नान करने की अनुमति नहीं है, विशेष रूप से मासिक धर्म काल के पहले कुछ दिनों के लिए।

#### शिक्षा एवं जागरूकता के स्तर पर

भारत में शिक्षा के मामले में महिलाओं की स्थिति पुरुषों से पीछे है। ग्रामीण स्तर पर स्थिति और भी खराब है। शिक्षा की कमी के कारण महिलायें स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को सही तरीके से नहीं समझ पाती हैं। मासिक धर्म के समय भी महिलायें जानकारी के अभाव के कारण स्वच्छता के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाती हैं। गाँवों में आज भी महिलायें पैड (नैपकिन) की जगह पुराने कपड़े का इस्तेमाल करती हैं जिससे बीमारी होने का भय बना रहता है। यही नहीं ग्रामीण महिलायें जिस कपड़े का इस्तेमाल करती हैं वह साफ-सुथरा भी नहीं होता है। इसके अलावा नैपकिन पैड के बारे में अभी भी उन्हें पर्याप्त जानकारी नहीं है। इसी कारण न तो वे इसको खरीद पा रही हैं और न ही इसका इस्तेमाल कर पा रही हैं। यही नहीं यदि कुछ महिलायें नैपकीन पैड का इस्तेमाल करती भी हैं तो उनको यह नहीं पता होता कि इसका प्रयोग कितने समय तक करना है। कई बार वे एक ही पैड को दुबारा इस्तेमाल कर लेती हैं जिससे कि संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है।

इस मामले में शहरों की स्थिति थोड़ी अच्छी है लेकिन वहाँ भी शिक्षा के स्तर पर महिलाओं में इस मुद्दे पर बात-चीत कम ही होती है। स्कूलों, कॉलेजों में भी छात्रों के बीच एक सकारात्मक बहस कम ही होती है। ग्रामीण व कम विकसित शहरों में यह भी देखा जाता है कि महिलायें जिस नैपकिन पैड या कपड़े का इस्तेमाल करती हैं उसे शर्म या लज्जा के कारण घर पर रखे डस्टबिन में नहीं फेंकती हैं बल्कि चोरी छुपे घर के बाहर फेंक देती हैं। इससे कई तरह की बीमारियों के फैलने का डर रहता है। साथ ही साथ पर्यावरण भी प्रदूषित होता है।

#### सरकारी स्तर पर

महिलाओं में पीरियड को लेकर जो जागरूकता की कमी या समस्यायें बनी हुई हैं इसके लिए सरकार भी कम जिम्मेवार नहीं है। सरकार अस्पतालों से लेकर स्कूलों तक इसके लिए कोई विशेष कार्य नहीं कर पायी है जिससे महिलाओं और बच्चियों में इसे लेकर जागरूकता फैले। स्कूली स्तर पर भी इस पर खुलकर बात नहीं की जाती है जबकि बच्चियों को सीखने का यह प्राथमिक केन्द्र है। यहाँ उनके स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं पर खुलकर बात-चीत हो सकती है। कम से कम महिला कॉलेजों या स्कूलों में तो हो ही सकती है क्योंकि वहाँ पर छात्र और शिक्षक दोनों महिलायें ही होती हैं। किंतु वास्तव में ऐसा नहीं हो रहा है।

इसके अलावा आंगनबाड़ी, आशा या फिर इसी तरह की सरकारी महिला कर्मचारी इस क्षेत्र में बेहतर कार्य कर सकती हैं। लेकिन ऐसा उदाहरण कम ही मिलता है कि इस तरह की समस्याओं पर वे ग्रामीण एवं शहरी स्तर पर लोगों के बीच खुलकर बातें करती हैं।

कई बार महिलाओं से संबंधित मुद्दों पर सरकार के द्वारा कई कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं लेकिन उनमें भी मासिक धर्म जैसे मुद्दों पर चर्चा कम ही होती है जिससे कि यह महिलाओं के स्वास्थ्य का एक मुख्य विषय नहीं बन पाता है।

सरकारी स्तर पर देखा जाये तो मासिक धर्म के दौरान महिला कर्मचारियों को किसी प्रकार की छुट्टी नहीं मिलती है। यही हाल निजी क्षेत्रों का भी है, जबकि पीरियड्स के दौरान महिलाओं को आराम की आवश्यकता होती है। चूंकि निजी क्षेत्रों में नौकरी खोने का डर रहता है इसलिए महिलाएँ इसे बताने से कतराती हैं। सरकारी दफतरों में भी महिलायें इस पर कम ही बात करती हैं।

#### स्वास्थ्य के स्तर पर

मासिक धर्म महिलाओं के लिए एक अनवरत प्रक्रिया (जो लगभग हर महीने होता है) है। यह लगभग 40-50 वर्ष की आयु तक चलती है। इस प्रक्रिया में अनियमितता आने से महिलाओं के स्वास्थ्य पर इसका बुरा असर पड़ता है। चूंकि इस दौरान पेट दर्द व सिर दर्द आदि की समस्या देखी जाती है और उससे बचने के लिए महिलायें दवा का भी सेवन कर लेती हैं जो उनके शरीर पर दुष्प्रभाव डालता है। इसके अलावा महिलाओं को इस दौरान कैसे रहना है और क्या करना है, की जानकारी के अभाव के कारण कई तरह की बीमारियाँ हो जाती हैं जैसे- एनीमिया, डायरिया, इन्फेक्शन आदि।

किशोरियों समाज का सबसे महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि एक किशोरी ही आने वाले समय कि महिला है जो एक अत्यंत महत्वपूर्ण श्रेणी है समाज को स्वास्थ्य रखने में जो स्वयं को समायोजित करने के साथ-साथ एक परिवार और सम्पूर्ण राष्ट्र के विकास के लिए आवश्यक है किशोरियों को मासिक धर्म के स्वास्थ्य एवं स्वच्छ रखने के लिए सरकार की तरफ से कदम बढ़ाये गये हैं किशोरियों को मासिक धर्म के समय सुरक्षित व स्वास्थ्य व स्वच्छ रखने के लिए कुछ रणनीतियों और योजनाओं का निर्माण किया जाना चाहिए। जिससे

कोई भी किशोरी मासिक धर्म के समया किसी सक्रमण से ग्रसित न हो और वह स्वस्थ रह सके। इसलिए सभी किशोरियों को मासिक धर्म के दौरान जागरूक करना आवश्यक है जिससे किसी भी किशोरी को कोई जानलेवा बीमारी न हो और सभी किशोरियां स्वस्थ रहे।

सुझाव-

1. किशोरियों को मासिक धर्म के बारे में घरए स्कूल दोनों जगह जानकारी देनी चाहिए।
2. किशोरियों को शिक्षित करने के लिए शिक्षा प्रदान करनी आवश्यक है।
3. किशोरियों को मासिक धर्म के लिए जो भी सरकार द्वारा योजनाएं चलाई जा रही है वह सभी किशोरियों को पता होनी चाहिए जिससे वह इन योजनाओं का लाभ ले सके।
4. प्रत्येक स्कूल में मासिक धर्म के समय पैड की व्यवस्था होनी चाहिए।
5. मासिक धर्म को लेकर समाज में फैली भ्रातियों को दूर करना होगा। लोगों में जागरूकता बढ़ाने की आवश्यकता है तथा यह नारी के जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है इस बात को बताने की भी आवश्यकता है।
6. सरकार को स्कूलों, कॉलेजों, अस्पतालों तथा सार्वजनिक शौचालयों में पर्याप्त मात्र में सैनिटरी पैड उपलब्ध कराना चाहिए जिससे कि छात्रों एवं महिलाओं को किसी प्रकार की समस्या न हो।
7. घरों एवं स्कूलों में इस पर खुलकर बातचीत होनी चाहिए जिससे कि महिलाओं के अन्दर जो झिझक है वह दूर हो सके। न सिर्फ सरकार बल्कि देश के आम नागरिक को भी इस कार्य में सहयोग करना चाहिए ताकि समाज रूढ़िवादिता से ऊपर उठ सके।
8. सरकार को इसके लिए उचित नीति निध शरण करनी चाहिए जिससे पैड के निर्माण व गुणवत्ता पर नजर रखी जा सके। साथ ही आशा व आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं के माध्यम से सुदूर गाँवों तक सैनिटरी पैड की पहुँच सुनिश्चित करनी चाहिए।
9. सरकार को महिला कर्मचारियों के लिए मासिक धर्म के दौरान अवकाश की व्यवस्था करनी चाहिए। यह नियम निजी संस्थाओं पर भी लागू होनी चाहिए।
10. अधिक से अधिक शौचालयों का निर्माण करके भी मासिक धर्म स्वच्छता को बढ़ावा दिया जा सकता है।
11. सैनिटरी नैपकिन पैड को न सिर्फ वितरित किया जाय बल्कि इसके फायदे को भी बताना होगा जिससे कि महिलायें इसका अधिक से अधिक इस्तेमाल कर सकें।
12. जिस तरीके से पैडमैन फिल्म बनी है उसी तरह से और भी फिल्मों का निर्माण करके तथा नुक्कड़ नाटकों के द्वारा जागरूकता फैलानी चाहिए।
13. सरकार को डिस्पोजल सैनिटरी नैपकिन को बायोडिग्रेडेबल बनाया जाना चाहिए जिससे कि बीमारियों से बचने के साथ-साथ पर्यावरण को भी स्वच्छ रखा जा सके।
14. सरकार को चाहिए कि सैनिटरी पैड का निर्माण सिंथेटिक सामग्री और रसायनयुक्त न हो जिससे कि महिलाओं के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर न पड़े।

**संदर्भ ग्रंथ सूची -**

1. प्रकाश एस, भारतीय, के: भारत में स्कूली किशोरियों में मासिक धर्म स्वास्थ्य और स्वच्छता प्रथाएं।
2. थियागराजन डीके, बासित एच, जीनमोनोड आर. स्टेटपल्स [इंटरनेट] ट्रेजर आइलैंड, एफएल: स्टेटपल्स पब्लिशिंग; 27 सितंबर 2024
3. किशोरावस्था स्वास्थ्य [इंटरनेट] Who.int. जिनेवा, स्विट्जरलैंड: WHO; 2023. [उद्धृत 3 मई 2023].
4. राठोरिया ई, राठोरिया आर, बंसल यू, अग्रवाल ए. पूर्वी उत्तर प्रदेश के किशोरों में अधिक वजन और मोटापे की व्यापकता। इंट जे साइंस रिसर्च।
5. कौर आर, कौर के, कौर आर. मासिक धर्म स्वच्छता, प्रबंधन और अपशिष्ट निपटान: विकासशील देशों की लड़कियों/महिलाओं द्वारा अपनाई जाने वाली प्रथाएं और चुनौतियां। जर्नल ऑफ एनवायरनमेंटल पब्लिक हेल्थ।
6. सहाय डीएन, मासिक धर्म से संबंधित मिथक और गलत धारणाएँ: दिल्ली की किशोर स्कूली छात्राओं का एक अध्ययन। जर्नल ऑफ वूमन्स हेल्थ डेवलपमेंट।
7. बेलेनेह जेड, मेकुरियाव बी. दक्षिणी इथियोपिया में किशोर स्कूली छात्राओं में मासिक धर्म स्वच्छता के बारे में ज्ञान और व्यवहार: एक क्रॉस-सेक्शनल अध्ययन। बीएमसी पब्लिक हेल्थ।
8. पराजुली पी, पौडेल एन, श्रेष्ठा एस. ग्रामीण नेपाल की किशोरियों में मासिक धर्म स्वच्छता के संबंध में ज्ञान और व्यवहार। जे काठमांडू मेड कॉलेज।

















